बृहद
सूक्ति-कोश
9

सूक्तियों में नीति के वचन थोड़े शब्दों में गागर में सागर की भाँति बड़ी सुन्दरता से व्यक्त होते हैं। इनमें उपदेश देने की छटा निराली होती है। ये भावों को सजा-संवार कर सजीव बनाने एवं वक्तव्य कला को चमकाने में बड़ी सहायक होती हैं।

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
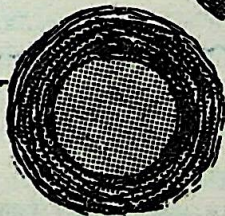
खण्ड नौ

विश्व के लब्ध-प्रतिष्ठ मनीषियों की विशिष्ट सूक्तियों का संदर्भ-ग्रन्थ

सम्पादक

शरण
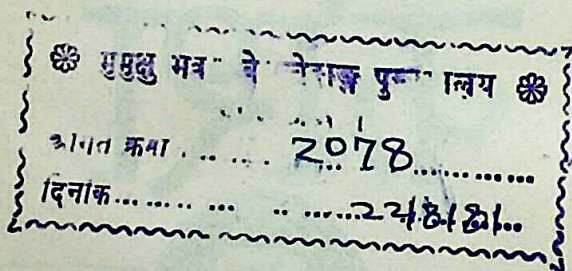
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन
२०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली
सम्पादक : शरण
संस्करण : १९७८
सर्वाधिकार : प्रकाशकाधीन
खण्ड : नवम्
मूल्य : दस रुपये
मुद्रक : नटराज ऑफ़सेट प्रिंटर्स, सीताराम बाजार, दिल्ली-6

VRIHAT SOOKTI KOSH : SHARAN : PART IX
(A Book of Quotations)
Rs 10/-

आमुख

सूक्तियाँ विश्व साहित्याकाश के दैदीप्यमान उज्ज्वल नक्षत्र ही नहीं अपितु मानव के अन्तराल में व्याप्त उल्लास की तरंगों को उद्वेलित करने वाली ऐसी ज्योति हैं जिसके प्रकाश में बुद्धि और हृदय एक साथ आलोकित होते हैं। यदि ये न हों तो साहित्य नीरस हो जाए और हमारा हृदय स्वर्गिक आनन्द से वंचित हो जाए। जहाँ ये अपने माधुर्य से अन्धकार के आवरण को छिन्न-भिन्न करके उसे प्रकाशित कर सकती हैं, जहाँ ये निराशा के बंधनों में जकड़े हुए पत्रों में समीर की तीव्र गति डाल सकती हैं, जहाँ ये अन्तरतम की असह्य पीड़ा को क्षणमात्र में दूर कर सकती हैं; वहाँ ये गम्भीर से गम्भीर आघात पहुँचाने की भी क्षमता रखती हैं। इस पर भी यही कहना होगा कि ये सूक्तियाँ मानव सृष्टि में कल्पतरु के समान हैं।

इन सूक्तियों की विशाल छाया में विश्राम कर मानव अपने जीवन पथ की थकान को दूर कर भविष्य की दुर्गम यात्रा को शांतिपूर्वक पूर्ण कर लेता है। अतः ये सूक्तियाँ मानव जगत् में ईश के समान ही सर्वव्यापी बन गई हैं। इनकी उपदेशात्मक छटा निराली ही है। इनमें नीति के वचन अल्प शब्दों में गागर में सागर के समान अद्वितीयता से व्यक्त होते हैं। हमारी संस्कृत देव भाषा में तो इनका भण्डार है। अन्य विदेशीय भाषाओं में भी इन पर अच्छी पुस्तकें निकली हुई हैं। हिन्दी में भी इन सूक्तियों पर निकली हुई कई पुस्तकें देखने को मिलीं, पर सभी अपने में अपूर्ण-सी ही थीं। हिन्दी में इस कमी को दूर के लिए मैंने यह क्षुद्र सा प्रयास किया है। युग-युग के लब्ध प्रतिष्ठ मनीषियों की सूक्तियों के संकलन

में मेरे दस वर्ष बीते हैं। अब इन्हें कुछ-कुछ पूरा कर पाया हूं। अब मेरा प्रयास वृहत् सूक्ति कोश के रूप में आपके हाथ में है।

इस विशाल संदर्भ ग्रन्थ को पाठकों की सुविधा हेतु बारह खण्डों में विभाजित कर दिया है। वृहत् सूक्ति कोश का प्रत्येक खण्ड अपने में पूर्ण है। इसमें लगभग सभी लब्ध प्रतिष्ठ देशी-विदेशी विद्वानों, कवियों, विचारकों, संतों एवं दार्शनिकों की मूल व अनूदित सूक्तियों के रूप में अमरवाणी का संकलन है। इसमें मैंने आधुनिक लेखकों की सूक्तियों को भी उसी आदर से संकलित किया है जिस सम्मान से प्राचीन विचारकों एवं लेखकों की सूक्तियों को। प्रत्येक खण्ड के अंत में विषयों की अनुक्रमणिका के साथ-साथ रचयिताओं की तालिका दे दी गई है। इससे पाठकों को विशेष सुविधा मिलेगी।

वृहत सूक्ति कोश का प्रत्येक खण्ड मेरे कृपालु पाठकों चाहे वे शिक्षार्थी हों, चाहे साहित्यकार हों, चाहे प्राध्यापक हों और चाहे राजनीतिज्ञ हों, के हाथों में से गुजरेगा, ऐसा मेरा अटूट विश्वास है। उनसे केवल मेरी सादर अनुनय यही है कि वे इनमें जो अपूर्णता एवं त्रुटि देखें उसके विषय में मुझे सूचित करने की कृपा करें। इनमें अधिक से अधिक संशोधन के लिए उदार भाव से मित्रों के परामर्श का स्वागत करूँगा।

विनीत

शरण

विषय-तालिका

मिथ्या

मिथ्या से बहला कर सत्य का प्रचार नहीं हुआ करता। सत्य को सच ही की तरह खुलासा कहना चाहिए। सत्य को मिथ्या की भूमिका से मुख-रोचक बनाने की चेष्टा के बराबर और कोई अन्याय नहीं है। मिथ्या पाप है; किन्तु मिथ्या को सत्य में मिलाकर कहने के समान पाप दुनिया में थोड़े ही हैं।

—शरच्चन्द्र (चरित्रहीन)

मिथ्या के झोले को सत्य मान कर वहन करने में तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। उससे तो तुम्हारी महत्ता ही नष्ट होती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मत)

मिथ्या का स्थान यदि कहीं है तो मनुष्य के मन को छोड़कर और कहीं नहीं।

—शरच्चन्द्र (श्रीकान्त, पर्व-१)

मिथ्या को सम्मान देकर जितना ऊँचा उठाया जाता है, उतनी ग्लानि, उतना ही कीचड़, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहता है।

—शरच्चन्द्र (ब्राह्मण की बेटी)

मिलन

असल में अपने को बिना भूले मिलन नहीं होता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य का तात्पर्य)

आत्मा और परमात्मा का मिलन ज्ञान, प्रेम और कर्म का मिलन है। उस मिलन में ही आनन्द का मिलन है। सम्पूर्ण से मिलना चाहो तो सम्पूर्णता द्वारा ही मिल सकते हो, तभी हमारा जो कुछ है चरितार्थ हो सकता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (समग्र एक)

वियोगियों के मिलन की रात बटोहियों के पड़ाव की रात है, जो बातों में कट जाती है।

—प्रेमचन्द (गबन)

प्रेम मिलन की आनन्दपूर्ण कल्पना के सामने शंकाएँ निर्मूल हो जाती हैं।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

कब, कहाँ, यह नहीं।
जब भी जहाँ भी हो जाय मिलना।
केवल यह : कि जब भी मिली तब खिलना।।

—अज्ञेय (इन्द्रधनु रौंदे हुए ये)

हौं जानौं पिय मिलन ते, विरह अधिक सुख होय।
मिलते मिलिए एक सौं, बिछरें सब ठाँ होय।।

—नंददास (नंददास ग्रन्थावली)

सम्मिलन प्रेम को सजग कर देता है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

मिथ्याचारी

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन।
इन्द्रियार्थान्वि मूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

(जो मानव कर्म करने वाली इन्द्रियों को रोकता है, किन्तु उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन मन से करता है, वह मूढात्मा मिथ्याचारी कहलाता है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

मिथ्याभिमान

मिथ्याभिमान हमारी निष्क्रियता और पतन का कारण है।

—अज्ञात

मिथ्यावादी

जहाँ बुद्धि और तर्क का कुछ वश नहीं चलता, मनुष्य मिथ्यावादी हो जाता है।

—प्रेमचन्द (प्रेम पचीसी)

मुकदमाबाजी

जीतना हार बराबर है, हारना मौत सरासर है,
कोई झगड़ा तुम में गर है, फैसला घर का बेहतर है;
करो पंचायत फिर जारी, अदालत लड़ना झखमारी।

—रूपनारायण पाण्डेय (पराग)

मुक्त-मुक्ति

मुक्ति क्या इतनी छोटी तनिक-सी वस्तु है? उसे क्या तुम आराम से नहाने का हौज समझ बैठे हो? नहीं, वह सागर है। उसमें भय तो है ही—उत्ताल तरंगें भी उसमें होंगी ही और मगरमच्छ आदि भी होंगे, नावें क्यों डूबती हैं, फिर भी वहीं जगत् के प्राण हैं, उसीमें सम्पूर्ण शक्ति, समस्त सम्पदा और सम्पूर्ण सार्थकता है। निरापद तालाब के भरोसे केवल प्राण धारण किया जा सकता है, जीवित नहीं रहा जा सकता।

—शरच्चन्द्र (अधिकार)

मुक्ति के लिए चाहे कितनी ही स्त्रियाँ मिल कर झगड़ा क्यों न करतीं, देने वाले असल मालिक पुरुष ही हैं, हम स्त्रियाँ नहीं। विश्व के क्रीत दासों को उनके स्वामियों ने ही एक स्वाधीनता दी थी, और उस दिन उनकी ओर से लड़े भी थे वे ही जो मालिकों की जाति के थे—दासों ने युद्ध के बल पर या युक्तियों के बल पर स्वाधीनता नहीं पाई। विश्व का नियम ही यह है कि शक्तिमान् ही शक्ति के बंधन से दुर्बलों को परित्राण देते हैं।

—शरच्चन्द्र (शेष प्रश्न)

मुक्ति संग्राम में विदेशियों की अपेक्षा देश के मनुष्यों के साथ ही मनुष्यों को अधिक लड़ना पड़ता है।

—शरच्चन्द्र (निबन्धावली)

पंडित पूत सपूत सुधी पतिनी पति-प्रेम परायन भारी।
जानै सबै गुन मानै सबै जन दान विधान दया उरधारी॥
'केसव' रोगनि ही सों वियोग संजोग सुभोगन सो सुखकारी।
साँच कहै जग माहि लहै जस यहै चहुँ वेद विचारी॥

—केशवदास (कविप्रिया)

जीवन मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख-सुख भुगता हो।
देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहाँ होई हो।
तीरथ वासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो।
जीवन भरम की फाँसी न काटी, मुए मुक्ति की आसा हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हो॥
ह्वै अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो।
बिना अतीत सदा बंधन में, कित हूँ जानि न पाई हों॥
आवागवन से गये छूटिके, सुमिरि नाम अविनासी हो।
कहै कबीर सोई जन गुरु है, काटी भ्रम की फाँसी हो॥

—कबीरदास (ग्रन्थावली)

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत् त्यज।
क्षमार्जवदयाशौच सत्यं पीयूषवत् पिब॥

(बंधु ! यदि तुझे मुक्ति की इच्छा है तो विषयों को विष के समान छोड़ दे और क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता तथा सत्य को अमृत के समान ग्रहण कर।)

—अज्ञात

अनुकरण से मुक्ति नहीं मिलती, मुक्ति मिलती है ज्ञान से।

—शरच्चन्द (शेष प्रश्न)

मुक्ति शून्यता में नहीं, पूर्णता में है, पूर्णता सृष्टि करती है, ध्वंस नहीं करती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सृष्टि)

मुक्ति का चरम लक्ष्य प्रेम है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (त्याग का फल)

कर्म को स्वार्थ की ओर से परमार्थ की ओर ले जाना ही मुक्ति है, कर्म का त्याग मुक्ति नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (शक्ति)

व्यक्ति की मुक्ति, पूर्णता व्यर्थ, जगत् यदि बंधन ग्रस्त, अपूर्ण,
सर्व के संग ही संभव श्रेय, सर्व ही में अभिव्यंजित पूर्ण।

—सुमित्रानन्दन पंत (लोकायतन)

कर्म की मुक्ति आनन्द में एवं आनन्द की मुक्ति कर्म में है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कर्म)

मुक्ति के क्षेत्र में शक्ति का अधिकार बहुत विस्तृत हो जाता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (जगत में मुक्ति)

मुक्ति हमें योग में लाती है और वैराग्य हमें प्रेम पथ पर लाकर खड़ा कर देता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (निर्विशेष)

विश्व रूपी कारागार में प्रेम को जागृत करना ही मुक्ति है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मुक्तिपथ)

कुछ भी वर्जन न करके समस्त को सत्यभाव में स्वीकार करना है मुक्ति।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मुक्ति)

नियम को परिपूर्ण भाव में आत्मसात् कर लेने का नाम ही मुक्ति है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नियम और मुक्ति)

जब तक संसार में कीट-पतंग आदि की मुक्ति न हो जाएगी तब तक मैं अपनी मुक्ति की आकांक्षा नहीं करता।

—भगवान बुद्ध

मुक्ति शब्द का अर्थ छूटना है। यहाँ प्रश्न होता है, किससे छूटना ? उत्तर स्पष्ट है कि दुःख अर्थात् बन्धनों से छूटना मुक्ति है। जहाँ बन्धन नहीं है, वहाँ मुक्ति भी है। जीवात्मा बद्ध है, इसलिए इसको मुक्ति की आवश्यकता है।

—स्वामी दयानन्द

परमेश्वर के ज्ञान बिना मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

मुक्त पुरुष के जीवन का चिन्तन करने से हमें अपनी मुक्ति के दर्शन होते हैं।

—ज्ञानदेव

फल के प्रति आसक्ति रखनेवाला कार्यकर्त्ता ही अपनी पूरी शक्ति के साथ उत्तरदायित्वों को निभाने में हिचकिचाहट दिखाता है। निरासक्त कार्यकर्त्ता के लिए सब कर्त्तव्य बराबर हैं, अच्छे हैं। प्रत्येक कर्त्तव्य उसके लिए स्वार्थ और विषयलोलुपता का उन्मूलन करने के लिए एक सुन्दर अस्त्र बनकर आता है, उसके द्वारा वह आत्मा की मुक्ति प्राप्त करता है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

मुक्त वही है जिसने अपना सब कुछ दूसरों के लिए त्याग दिया। किन्तु जो दिनरात 'मेरी मुक्ति' का राग अलापने में ही अपने मस्तिष्क को खराब करते हैं, वे अपने वर्तमान और भावी कल्याण का नाश कर व्यर्थ ही इधर-उधर भटकते रहते हैं।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

न तो कष्टों को निमंत्रण दो और न उनसे भागो। जो आता है, उसे झेलो। किसी चीज से प्रभावित न होना ही मुक्ति है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

अरइं आउट्ठे से मेहावी खणंसि मुक्के।

(संयम के प्रति अरुचि से मुक्त रहनेवाला मेधावी साधक पलभर में ही बंधनमुक्त हो सकता है।)

—महावीर स्वामी (आचारांग)

माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ।

(मृत्यु से सदैव सतर्क रहने वाला साधक ही उससे मुक्ति पा सकता है।)

—महावीर स्वामी (आचारांग)

सयमेव कडेंहि गाहइ, नो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं।

(आत्मा स्व कर्मों से ही बन्धन में पड़ता है। कृत कर्मों को भोगे बिना मुक्ति नहीं है।)

—महावीर स्वामी (सूत्रकृतांग)

केवल वीर ही मुक्ति को सरलतापूर्वक पा सकता है, न कि कायर।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धामपरमम्मम॥

(वहाँ न भास्कर का प्रकाश है, न चन्द्र का और न अग्नि का, जहाँ जाने के बाद फिर लौटना नहीं होता है, वही मेरा परमधाम है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

आहंसु विज्जाचरणं पमोक्खं ।
(ज्ञान और कर्म से ही मोक्ष प्राप्त होता है।)

—महावीर स्वामी (सूत्रकृतांग)

एगे मरणं अंतिमसारीरियाणं ।

(मुक्त होनेवाली आत्माओं का वर्तमान अन्तिम देह का मरण ही—एक मरण होता है और नहीं।)

—महावीर स्वामी (स्थानांग)

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।
(कृत कर्मों का फल भोगे विना मुक्ति नहीं है।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं ।
(इच्छाओं को रोकने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।)

— महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

इदमुच्छे योऽवसानमागाम् ।

(जहाँ चलना पूर्ण होता है, मैं उस परम निःश्रेयस् स्वरूप गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया हूँ।)

—अथर्ववेद

वासनाप्रक्षयो मोक्षः ।
(वासना का नाश ही मोक्ष है।)

— अध्यात्मोपनिषद्

द्वे पदे बन्ध मोक्षाय निर्ममेति ममेति च ।

—पैङ्गलउपनिषद्

इनि आ वहमाईआ, जे चेव हवंति कम्म बंधाय ।
अजयाणं ते चेव उ, जयाण निव्वाणगमणाय ॥

(जो गमनागमन आदि क्रियाएँ असंयत के लिए कर्मबंध का कारण होती हैं, वे ही यत्नशील के लिए मुक्ति का कारण बन जाती हैं।)

—आचार्य भद्रबाहु (ओघनिर्युक्ति)

वेदस्योपनिषद् सत्यं, सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्॥

(वेदों के अध्ययन का सार है सत्य भाषण, सत्य भाषण का सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयम का सार है मोक्ष। यही सम्पूर्ण धर्मों, ऋषियों एवं शास्त्रों का उपदेश है।)

—महाभारत

जे जत्तिआ अ हेउं भवस्य, ते चेव तत्तिआ मुक्खे।

(जो और जितने हेतु विश्व के हैं, वे और उतने ही हेतु मुक्ति के हैं।)

—आचार्य भद्रबाहु (ओघनियुंक्ति)

सव्वारंभ परिग्गहणिक्खेवो सव्वभूतसमया य।
एक्कग्गमण समाहाणया य, अह एत्तिओ मोक्खो॥

(सब तरह के आरम्भ और परिग्रह का त्याग, सब जीवों के प्रति समता और मन की एकाग्रता रूप समाधि बस इतना मात्र मोक्ष है।)

—वृहत्कल्प भाष्य

सामाइएणं सावज्जजोग विरइं जणयई।

(सामयिक की साधना से पापकारी प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

परमार्थतस्तु ज्ञानदर्शन चारित्राणि मोक्षकारणं न लिंगादीनि।

(परमार्थ की दृष्टि से, ज्ञान, दर्शन और चरित्र ही मुक्ति का मार्ग हैं, वेष आदि नहीं।)

—उत्तराध्ययन चूर्णि

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गे त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥

(वस्तु स्वरूप को यथार्थ रूप जाननेवाले जिन भगवान् ने ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बताया है।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

विवेगा मोक्खो।

(वास्तव में विवेक ही मोक्ष है।)

—आचारांग चूर्णि

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं।

(ज्ञान के समग्र प्रकाश से, अज्ञान एवं मोह के विवर्जन से तथा राग एवं द्वेष के क्षय से, आत्मा एकान्त सुख स्वरूप मुक्ति को प्राप्त करता है।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

णाणं पयासगं, सोहओ तवो संजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हं पि समाजोगे, मोक्खो जिणसासणे भणिओ।।

(ज्ञान प्रकाश करने वाला है, तप विशुद्धि एवं संयम पापों का निरोध करता है। तीनों के समयोग से ही मुक्ति होती है—यही जिन शासन का कथन है।)

—आचार्य भद्रबाहु (आवश्यक निर्युक्ति)

ण वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं ण वि य सव्व देवाणं।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वावाहं उवगयाणं।।

(विश्व के सब मानवों और सब देवों को भी वह सुख प्राप्त नहीं है, जो सुख अव्वावाध स्थिति को प्राप्त हुए मुक्त आत्माओं को है।)

—औपपातिक सूत्र

अउलं सुहंसपत्ता उवमा जस्स नत्थि उ।

(मोक्ष में आत्मा अनंत सुखमय रहता है। उस सुख की न कोई उपमा ही है और न कोई गणना ही।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

कायर जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त नहीं हो सकते।

—गुरु गोबिन्दसिंह (विचित्र नाटक)

पक्के फलम्हि पडिए, जह ण फलं बज्झए पुणो विंट ।
जीवस्स कम्मभावे, पडिए णा पुणोदयमुवेइ ।।

(जिस तरह पका हुआ फल गिर जाने के बाद पुनः वृक्ष में नहीं लग सकता, उसी तरह कर्म भी आत्मा से वियुक्त होने के बाद पुनः आत्मा को नहीं लग सकते ।)

—आचार्य कुंदकुंद (समयसार)

निव्विकप्पसुहं सुहं ।
(वस्तुतः रागद्वेष के विकल्प से मुक्त निर्विकल्प सुख ही सुख है ।)

—बृहत्कल्प भाष्य

परिणिव्वुतोणाम रागद्दोसविमुक्के ।
(राग और द्वेष से मुक्त होना ही परिनिर्वाण है ।)

—उत्तराध्ययन चूर्णि

वीतरागजन्मादर्शनात् ।
(वीतराग के जन्म का अदर्शन है ।)

—न्यायदर्शन

वासनाप्रक्षयो मोक्षः सा जीवन्मुक्तिरिष्यते ।
(वासना-क्षय का नाम ही मोक्ष है और यही जीवन्मुक्ति कहलाती है ।)

—शंकराचार्य (विवेक चूड़ामणि)

मुख

हमारा मुख भावों की लीला भूमि है, उसमें ऐसे कुछ का आभास मिलता है जो रक्त-मांस से अतीत है, जो अरूप के क्षेत्र का है, और उसीमें मुख का मुख्य परिचय है ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सृष्टि)

छिप्यो छबीलो मुख लसै, नीले अंचल चीर।
मनो कला निधि झलमलै, कालिन्दी के नीर।।

—बिहारी

लघु मुख मोटी बात तैं, नफौ न देख्यौ आँख।
मरणु पकंठे आवही, ज्यौं चींटी के पाँख।।

—अज्ञात

मानव का मुख तो उसका अपना जीवन-ग्रन्थ है।

—साने गुरुजी

मुद्रण

बचना, मुद्रण है महा जन्तु इस युग का,
वह सूंघ पता पा जाय न जिस सुग-सुग का।
भूंकेगा उस पर जो न खिलाता होगा।
टुकड़ा दो तो पूंछ हिलाता होगा।

—मैथिलीशरण गुप्त (राजा-प्रजा)

मुनि

जो उद्विग्न नाहिं दुःख माहीं। सुख महँ जाहिं लालसा नाहीं।
राग क्रोध भय जेहि न सतावत। सोई मुनि स्थितप्रज्ञ कहावत।।

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

धीरज तात क्षमा जननी परमारथ मीत महारुचि मासी।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अतिभासी।।
उद्यम दास विवेक सहोदर वृद्धि कलत्र शुभोदम दासी।
भाव कुटुम्ब सदा जिनके ढिग यों मुनि को कहिये गृहवासी।।

—अज्ञात

मुमुक्षु

घाता ने भी सरल-हृदया कामिनी को बना के,
विश्वासों को निर्वित रच के, भक्ति की देह दे के;
कैसा प्यारा भवन विरचा पुत्र का, प्रेम का भी,
तो भी कोई विरत बनते, मुक्ति को चाहते हैं।

—अनूप शर्मा (सिद्धार्थ)

मुल्ला

'बुल्ला' मुल्ला ते मसालची, दोहांदा इको चित्त ।
लोकां करदे चानना, आप हनेरे विच्च ॥

—अज्ञात

मुसलमान

जो मन मूसै आपनो, साहिब के रुख होय ।
ज्ञान मुसल्ला यह टिकै, मुसलमान है सोय ॥

—अज्ञात

मुसलमान भाई, हो शांत,
सोचो तनिक तुम्हीं एकांत !
तुम निज हेतु करो सब कर्म,
और छोड़ दें हम निज धर्म ?

—मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दू)

मुसीबत

मुसीबत जाना ही नहीं चाहती है, एक जाती है तो दूसरी आ खड़ी होती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कहानी)

जेहि अंचल दीपक दुरो, हन्यो सो ताही बात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥

—रहीम

इशरते कतरा है दरिया में फना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना॥

—गालिब

मुसीबत के दिनों में अजीब-अजीब इंसानों से जान-पहचान हो जाती है।

—शेक्सपियर

अग्नि स्वर्ण को परखती है, मुसीबत वीर पुरुषों को।

—सेनेका

मुरली

अधर धरत हरि के परत, होंठ दीठि पट ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र-धनुष रंग होति॥

—बिहारी

किती न गोकुल कुल वधु, काहि न किन सिख दीन।
कौने तजीं न कुल-गली, ह्वै मुरली-सुर लीन॥

—बिहारी

मुसकान

मुसकान, जो शिशु के अधरों पर क्रीड़ा कर रही है, ऐसा प्रतीत होता है मानो शरद् के विलीन होने वाले मेघों की कोर को छूने वाली द्वितीया के चन्द्र की किरणें तथा स्नात प्रभात के स्वप्न से उत्पन्न हुई है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जिस मुख पर मुसकान नहीं आती वह अच्छा नहीं होता।

—मार्शल

स्त्री के मुख पर सुन्दर मुस्कान वैसी ही है जैसे प्राकृतिक दृश्य पर सूर्य की किरणें। साधारण चेहरे को यह शोभावान बना देती है और कुरूप को दीप्तिमान्।

—लेवेटर

मुसकान प्रेम की भाषा है।

—हेमर

जैसे गुलाब के लिए सुगन्ध वैसे ही नारी के लिए मुसकान।

—जानसन

मधुर हास्य घर में सूर्य-प्रकाश के तुल्य है।

—थैकरे

मुसकान थके हुए के लिए विश्राम है, हतोत्साह के लिए दिन का प्रकाश है, उदास के लिए धूप तथा कष्ट के लिए प्रकृति का सर्वोत्तम प्रतिकार है।

—अज्ञात

मुसकान पाने वाला धनवान् हो जाता है किन्तु देने वाला निर्धन नहीं होता है।

—अज्ञात

मुहब्बत (दे॰ प्रेम, प्यार)

यह इश्क नहीं आसां इतना ही समझ लीजे।
एक आग का दरिया है और डूब के जाना॥

—जिगर

इलाही तर्क मुहब्बत भी क्या मुहब्बत है।
भुलाते हैं उन्हें वह याद आए जाते हैं॥

—जिगर

ये दर्द सर ऐसा है कि सर जाये तो जाये ।
उल्फत का नशा जब कोई मर जये तो जाये ।।

—ज़ौक़

मुहब्बत त्याग की माँ है, जहाँ जाती है, बेटे को साथ ले जाती है ।

—सुदर्शन

मूढ़

आउ वित्त गृह छिद्र तप, मैथुन औषध दान ।
मंत्र प्रकासै मूढ़ नर, महत अनै अपमान ।।

—अज्ञात

कहै ते समझ नाहिं समझाये समझे नहिं,
कवि लोग कहैं काहि के अविसार सी ।
काक को कपूर जैसे मरकट को भूषन जैसे,
ब्राह्मन को मक्का जैसे मीर को बनारसी ।।
बहिरे के आगे तान गाए को सवार जैसे,
हिजरे के आगे नारि लागत अंगार सी ।
कहैं कवि गंग मन माहि तो विचार देखो,
मूढ़ आगे विद्या जैसे अन्ध आगे आरसी ।।

—अकबरी दरबार

मूर्ख

कूप खनहिं मन्दिर जरत, लावहि धारि बबूर ।
बोये लुन चह समय बिन, कुमति शिरोमणि कूर ।।

—तुलसीदास (तुलसी सतसई)

मुकुट लंगर मजार, सिंघ ध्रूवर मेहल मिलौ ।
मिलज्यौ मती मुरार, नाई मूरख नाथिया ।।

—नाथूराम

चतुर सभा में कूर नर, सोभा पावत नाहिं।
जैसे वक सोभित नहीं, हंस मडली माहिं॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

जो हँसता पानी पियै, चलता खावै खान।
द्वै वतरावत जात जो, सो सठ ढीठ अजान॥

—बुधजन सतसई

शक्यो वारयितुं जलेन हुत भुक्छत्तेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभी।
व्याधिर्भेषज संग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं,
सर्वस्योषधमस्ति शास्त्र विहितंमूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥

(जल से आग को रोकना सम्भव है, छतरी से धूप का निवारण करना सम्भव है, मस्त हाथी भी अंकुश से वश में किया जा सकता है, गौ, गधा आदि पशुओं को डंडे से वश में कर सकते हैं, रोग का निदान अनेक प्रकार की औषधियों से दूर करना सम्भव है और मंत्र द्वारा ज़हर भी उतर जाता है, इस तरह धरा पर सब चीजों की शास्त्रोक्त औषध है, किन्तु मूर्ख की कोई औषध नहीं है।)

—भर्तृहरि

काग! भले मोतीन चुगु, वसि मानस सर माहिं।
नीर-छीर विलगाइयो, तेरे बस की नाहिं॥

—किशोरीदास वाजपेयी (तरंगिणी)

बुद्धि-हीन जानत नहीं, पर-हित कारक रीति।
निज मुख ही ते करत है, जिमि बालक कर प्रीति॥

—अज्ञात

कहै कवि 'गंग' मन माहिं तो विचार देखो
मूढ़ आगे विद्या जैसे अंध आगे आरसी।

—गंग (अकबरी दरबार)

प्रक्षीयते घनोद्रेको जनानामविजानताम् ।
(विवेकहीन अज्ञानी मानवों का ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है।)

—महाभारत

वरं कर्दमभेकत्वं मलकीटकता वरम् ।
वरमन्धगुहाऽहित्वं, न नरस्याऽविचारिता ॥

(कीचड़ में मेंढक बनना अच्छा है, विष्ठा का कीट बनना अच्छा है और अंधकार गुफा में सर्प होना भी अच्छा है पर मनुष्य का अविचारी (मूर्ख होना) अच्छा नहीं है।)

—योगवाशिष्ठ (मुमुक्षुप्रकरण)

न मौर्ख्यादधिको लोके कश्चिदस्तीह दुःखदः ।
(मूर्खता से बढ़कर अन्य कोई जगत् में दुःख देने वाला नहीं है।)

—योगवाशिष्ठ (उपशम प्रकरण)

आपतन्ति प्रतिपदं यथा कालं दहन्ति च ।
दुःखचिन्ता नरं मूढं तृणमग्निशिखाइव ।

(अग्नि की ज्वालाएँ जैसे घास-फूंस को जला डालती हैं वैसे ही मूर्ख पुरुष को पगपग पर दुःख-चिन्ताएँ प्राप्त होती हैं और उसे भस्म कर डालती हैं।)

—योगवाशिष्ठ (मुमुक्षु प्रकरण)

मूर्खो हि जल्पतां पुंसां, श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः ।
अशुभं वाक्यमादत्ते, पुरीषमिव शूकरः ॥

(मूर्ख मानव परस्पर बातचीत करने वाले दूसरे लोगों की भली-बुरी बातें सुनकर उनसे बुरी बातों को ही ग्रहण करता है, ठीक वैसे ही, जैसे सूअर अन्य अच्छी खाद्य वस्तुओं के होते हुए भी विष्ठा को ही अपना आहार बनाता है।)

—महाभारत

वह मूर्खों में भारी मूर्ख है जो जानता है कि इस संसार में सुख है।

—गुरु रामदास

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकर वक्त्र दंष्ट्रांकुरात्
समुद्रमपि सतरेत् प्रचल दूर्मिमालाकुलं।
भुजंगंपि कोपितम् शिरसि पुष्प वद्धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्तांशधयेत्॥

(मानव मगरमच्छ के मुख से बलपूर्वक मणि निकाल सकता है और जिसमें भयंकर तरंगें उठती हों, ऐसे दुस्तर सागर को भी तैर कर पार कर सकता है, क्रोधित सर्प को फूल की तरह सिर पर धारण कर सकता है, किन्तु जिद्दी मूर्खों के मन को नहीं मना सकता।)

—भर्तृहरि

अज्ञ सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलव दुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति॥

(अनजान मानव को सरलता से सुधार सकते हैं, ज्ञानियों को अति सुख से वशीभूत कर सकते हैं, किन्तु अल्पज्ञ मूर्ख को ब्रह्मा भी नहीं सुधार सकता।)

—भर्तृहरि

जितने प्रश्नों का उत्तर बुद्धिमान् सात वर्षों में दे सकता है, उससे कहीं अधिक प्रश्न मूर्ख एक घण्टे में पूछता है।

—कहावत

मूर्ख का हृदय उसके मुख में रहता है, जबकि ज्ञान की जिह्वा उसके हृदय में।

—अज्ञात

मूर्ख छः बातों से जाना जा सकता है—अकारण क्रोध, बिना लाभ के बातचीत, बिना विकास के परिवर्तन, बिना आधार पूछताछ, अपरिचित मनुष्य का विश्वास करना और शत्रु को मित्र समझना।

—अज्ञात

मूर्ख दावत देते हैं और बुद्धिमान् उसे खाते हैं।

—कहावत

यदि मूर्ख नहीं समझता तो सद्‌ग्रन्थों का क्या दोष ? यदि अंधा नहीं देखता तो दर्पण का क्या दोष ?

—अज्ञात

मूर्ख मानव चाहे सुनहले काम के वस्त्र पहन ले फिर भी वे मूर्ख के ही वस्त्र रहेंगे।

—रीवारोल

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेद्
न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजनचित्तमाराधयेत्।

(यत्नपूर्वक पेरने से रेत में से तेल निकालना सम्भव है; मृगतृष्णा से प्यासे की प्यास बुझाना सम्भव है; ढूंढ़ने से खरगोश का सींग भी मिल सकता है परन्तु मूर्ख का मन जिस वस्तु की ओर झुक गया है उससे हटना सम्भव नहीं है।)

—भर्तृहरि

मूरख को समझावते ज्ञान गांठि को जाय।
कोयला होय न ऊजरो नौ मन साबुन लाय।।

—कबीर

विचार-हीन मनुष्य ही मूर्ख है।

—शंकराचार्य

अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः।
सकृद दुःखकरावाद्यौ अन्तिमस्तु पदे पदे।।

(जो पुत्र पैदा ही न हुआ हो अथवा पैदा होकर मृत हो गया हो अथवा मूर्ख हो, इन तीनों में पहले दो ही बेहतर हैं, न कि तीसरा। कारण यह है कि प्रथम दोनों तो एक बार ही दुःख देते हैं, जबकि तीसरा पद-पद पर दुःखदायी होता है।)

—हितोपदेश

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति न च तारागणैरपि॥

(एक गुणवान पुत्र ही बेहतर है, सौ मूर्ख पुत्र नहीं। एक चन्द्रमा सारा अंधकार दूर कर देता है जो झुण्ड के झुण्ड तारे नहीं कर पाते।)

—चाणक्य

मूर्खों की मूर्खता से लाभ उठाना पाप ही है।

—आचार्य चतुरसेन

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्यशल्येन निर्दृशं कण्टकोयथा॥

(मूर्ख को दूर करना ठीक है; क्योंकि देखने में वह मनुष्य यथार्थ में दो पैरों का पशु है और वाक्यरूपी शल्य से वेधता है, जैसे अंधे को काँटा।)

—चाणक्य

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रांतं वनचरैः सह।
न मूर्ख जनसंपर्कः सुरेन्दभवनेष्वपि॥

(पर्वतों और वनों में वनचरों के संग विचरना श्रेष्ठ है, परन्तु मूर्खों के संग स्वर्ग में भी रहना बुरा है।)

—भार्तृहरि

फूलइ फरइ न बेंत, जदपि सुधा बरषहि जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलैं विरंचि सम॥

—तुलसीदास

शतं दद्यान्न विवदेदिति विज्ञस्य समतम्।
विना हेतुमपि द्वन्द्वमेतन्मूर्खस्य लक्षणं॥

(अपनी सहस्रों की क्षति सह ले, किन्तु विवाद न करे यह बुद्धिमान् का मत है। और बिना कारण ही क्लेश कर बैठना यह मूर्ख का लक्षण है।)

—हितोपदेश

जो आदमी यह न समझे कि किस मौके पर कौन-सा काम करना चाहिए, किस मौके पर कौन-सी बात कहनी चाहिए, वह मूर्ख (पागल) नहीं तो और क्या है ?

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

पयःपानं भुजङ्गानाम् केवलं विषवर्धनम्।
उपदेशो हि मूर्खाणाम् प्रकोपाय न शान्तेय ।।

(जैसे सर्पों का दूध पिलाना केवल विष बढ़ाना है, वैसे ही मूर्खों को उपदेश करना भी क्रोध को बढ़ाने वाला है; शांति देनेवाला नहीं।)

—हितोपदेश

मूर्खता

जिसे संसार में रहकर सांसारिकता का ज्ञान न हो, वह मंद बुद्धि है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

जिसके साथ स्नेह किया जाए उसके चरित्र पर शंका करना भारी मूर्खता है।

—अज्ञात

कोई आदमी शेर पर पत्थर फेंके, तो उसकी वीरता नहीं, उसका अभिमान भी नहीं, उसकी बुद्धिहीनता है। ऐसा प्राणी दया के योग्य है; क्योंकि जल्दी अथवा देर में वह शेर के मुंह का ग्रास बन जायेगा।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

उसी पाषाण से पुनः टकराना मूर्खता है।

—सिसरो

कटु सत्य की दुहाई देकर जीवन की मेल-जोल वाली चाल में लड़खड़ाहट पैदा कर देना मूर्खता है।

—अज्ञात

एक की मूर्खता से दूसरे का भाग्य बनता है।

—बेकन

साधु के मस्तिष्क में भी मूर्खता का कोना होता है।

—कहावत

मूर्च्छा

मूर्छा निद्रा की सहोदय है। जिस तरह निद्रा श्रमित ब्रह्माण्ड को स्व-विशाल वक्षःस्थल पर सुलाकर शान्ति प्रदान करती है, उसी तरह मूर्छा भी व्यथित प्राणी को अपनी कोख में लेकर उसे शांति प्रदान करके फिर तुमुल संघर्ष के हेतु प्रस्तुत करती है।

—अज्ञात

मूर्ति-पूजा

हमारे देश की मूर्ति-पूजा में ज्ञान और भक्ति के साथ कल्पना का सम्मेलन करने की जो चेष्टा की गई है उसी के द्वारा हमारे देश का धर्म पुरुषों की दृष्टि में दूसरे देशों की अपेक्षा सम्पूर्णता में श्रेष्ठ हुआ है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा)

मूर्ति में जिनकी इष्ट-भावना होती है वे ही विश्वासपूर्वक उसकी पूजा करते हैं इस सत्य को हृदय में उतारने के लिए विश्वास चाहिए।

—स्वामी विवेकानन्द

मूर्ति-पूजा सर्वव्यापी प्रभु के दर्शन की प्रथम सोपान है।

—अज्ञात

मूर्ति में भावना का मौन दर्शन होता है।

—साने गुरुजी

मूल्य

मेरे विचार से मनुष्य का मूल्य उसके काम या उसके कथन से नहीं, बल्कि वह जीवन में स्वयं क्या बन रहा है इसे देखकर आँकना चाहिए।

—अरविन्द

गुण नीच मनुष्यों में द्वेष और महान् व्यक्तियों में स्पर्धा उत्पन्न करता है।

—फील्डिंग

मृत्यु (दे० मौत)

मृत्यु तो प्रभु का आमन्त्रण है। जब वह आए तो द्वार खोलकर उसका स्वागत करो और चरणों में हृदयधन सौंप अभिवादन करो।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मृत्यु का फव्वारा जीवन के स्थिर जल को नर्त्तन कराता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अमृत के योग को मृत्यु ही प्रकाशित करती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मृत्यु का प्रकाश)

आओ हे परम दुःख निलय,
आशा अंकुर भरो विलय,
आओसंग्राम आओ महाजय,
आओ हे मरण साधन।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मरण)

जिस प्रकार बुझने से पहले एक बार दीपशिखा प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व मान्यताएँ भी बहुत स्वच्छ हो जाती हैं। अतीत की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती-जाती हैं। समय की ग्रन्थ उन पर से बिल्कुल हट जाती है।

—शरण (सोना माटी)

मृत्यु की छाप जीवन के सिक्के को मूल्यवान बना देती है ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जीवन की भाँति मृत्यु का भी सबसे विशिष्ट आलोक मुख पर ही पड़ता है ।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

जिस मृत्यु पर घर वाले रोएँ वह भी कोई मृत्यु है, वह तो ऐड़ियाँ रगड़ना है । वीर मृत्यु वही है जिस पर बेगाने रोयें ।

—प्रेमचन्द (रगभूमि)

दिव्य मृत्यु दिव्य जीवन से कहीं उत्तम है ।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

मृत्यु में मानसिक प्रवृत्तियों को शान्त करने की विलक्षण शक्ति होती है । ऐसे विरले ही प्राणी संसार में होंगे जिनके अन्त:करण मृत्यु के प्रकाश से आलौकित न हो जाएँ । अगर कोई ऐसा मनुष्य है, तो उसे पशु समझो ।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

जिस प्रकार जख्मी सिपाही अपनी जीत का समाचार पाकर अपना दर्द, अपनी पीड़ा भूल जाता है, उसी प्रकार क्षण भर के लिए मौत भी हेय हो जाती है ।

—प्रेमचन्द (आगा-पीछा)

जीवन और मृत्यु में केवल एक पग का अन्तर था । पीछे का एक पग कितना सुलभ था, कितना सरल ! आगे का एक पग कितना कठिन था, कितना भयकारक ।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

मृत्यु के पर्दे के सिवा वेदना ओर विवशता को छिपाने की कोई आड़ नहीं ।

—प्रेमचन्द (प्रायश्चित)

मृत्यु सच्चा मित्र है । हमारा अहंभाव हमको दु:ख देता है ।

—महात्मा गांधी

मृत्यु को प्राय: जितने निमन्त्रण दिए जाते हैं, यदि वह सबको स्वीकार करती तो आज सारा संसार उजाड़ दिखाई देता।

—प्रेमचन्द (गरीब की हाय)

जवानी की मौत संसार का सबसे करुण, सबसे अस्वाभाविक और सबसे भयंकर दृश्य है। यह वज्रघात है, विधाता की निर्दय लीला है।

—प्रेमचन्द (गुप्तधन)

मौत को किसी से द्वेष नहीं होता। मगर स्वार्थियों के हाथों यह अत्याचार असह्य हो जाता है।

—प्रेमचन्द (माता का हृदय)

मृत्यु थकावट के सदृश है, परन्तु सच्चा अन्त तो अनन्त की गोद में है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक कर सामने आती हैं। समय की धुन्ध बिल्कुल उन-पर से हट जाती है।

—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

मृत्यु के बारे में सदैव प्रसन्न रहो, और इसे सत्य मानो कि भले आदमी पर जीवन में या मृत्यु के पश्चात कोई बुराई नहीं आ सकती।

—सुकरात

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायक:।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशय:॥

(कुलटा पत्नी, कपटी मित्र, जवाब देने वाला सेवक और सर्प गृह में रहना मृत्यु ही है, सन्देह नहीं।)

—चाणक्य

स्वेच्छित मृत्यु मुक्ति है, मृत्यु का चित्र हमें सदा प्रत्यक्ष रहे तो क्षुद्रता में हम न गिरें।

—जैनेन्द्र (जै० क० भाग ७)

अपकीर्ति ही मृत्यु है।

—स्वामी शंकराचार्य

मृत्यु के द्वार से ही सत्य को प्राप्त करना होगा।

—जैनेन्द्र (जै० क० भाग ७)

मौत ऐसी तुच्छ वस्तु है कि उसका चाहना लज्जास्पद है। चाहने को मेरे पास उससे बड़ी वस्तु है। जीवन है और मोक्ष है। मौत मोक्ष नहीं है और मैं मौत नहीं।

—जैनेन्द्र (जै० क० भाग-२)

मौत से छिपने के लिए आदमी रोज आदमियत की मौत बरदाश्त करता रहता है। जीवन से लोग चिपटते हैं और आत्मा को कुचल देते हैं।

—जैनेन्द्र (मंथन)

मृत्यु तो केवल पुनर्जीवन की सूचना है एक उच्चतर जीवन का मार्ग है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

काल हम पर विजय प्राप्त करते हैं अपनी सुकीर्ति से, यश से, व्रत से। परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है। काल पर विजय पाने का अर्थ यह नहीं है कि कृत्रिम साधनों से भोगविलास में प्रवृत्त हो, वृद्ध होकर जवान बनने का स्वप्न देखें और अपनी आत्मा को धोखा दें।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

हमारी अन्तिम घड़ियाँ किसी अपूर्ण साध को अपने हिय के भीतर छिपाये हुए होती हैं। मृत्यु पहले हमारी ईर्ष्या, सारा भेद-भाव, सारा द्वेष नष्ट करती है। जिनकी सूरत से हमें घृणा होती है उनसे फिर वही पुराना सौहार्द, पुरानी मैत्री करने के लिए, उनको गले लगाने के लिए हम उत्सुक हो जाते हैं। जो कुछ कर सकते थे और न कर सके उसीकी एक साध रह जाती है।

—प्रेमचन्द (आगा-पीछा)

मरे को मन भर लकड़ी से जलाओ, या दस मन से, उसे क्या चिन्ता ?

—प्रेमचन्द (गरीब की हाय)

हम जीते मनुष्य से नहीं डरते, पर मुर्दे से डरते हैं।

—प्रेमचन्द (गरीब की हाय)

मौत को धोखा देने में आनन्द आता है। वह उस समय कभी नहीं आती जब लोग उसकी राह देखते होते हैं। रोगी जब सम्भल जाता है, जब वह पथ्य लेने लगता है, उठने-बैठने लगता है, घर पर खुशियाँ मनाने लगता है, सबको विश्वास हो जाता है कि संकट टल गया, उस वक्त घात में बैठी हुई मौत सिर पर आ जाती है। यही उसकी निष्ठुर लीला है।

—प्रेमचन्द (माता का हृदय)

कांची काया मन अथिर, थिर थिर काज करन्त।
ज्यों-ज्यों नर निधड़क फिरत, त्यों-त्यों काल हसन्त ॥

—कबीरदास (कबीर ग्रन्थावली)

चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइके, साबित गया न कोय ॥

—कबीरदास (कबीर ग्रन्थावली)

इस चाँदनी बाद आयेगा यहाँ विकट अँधियाला।
यही बहुत है छलक न पाया जो अब तक यह प्याला ॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

मृत्यु का तन आग है, अंगार है।
जिंदगी हरियालियों की धार है ॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

अकाल की मृत्यु विलोक दुःख से
मनुष्य रोते मति-हीन सर्वथा;
किया गया निश्चित मृत्युकाल क्या ?
कही गई विज्ञ अकाल की न क्या ?

—अनूप (वर्द्धमान)

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द।।

—कबीरदास (कबीर वचनावली)

वनिक, निर्धन, ब्राह्मण, क्षुद्र, या
नृपति, भिक्षु, सुखी अथवा दुखी।
मर गए, मरते, मर जायेंगे,
मरण तो सबका अनिवार्य है।

—अनूप (सिद्धार्थ)

शुनी-समा मृत्यु सदैव घूमती
सतर्क प्रत्येक निवेश द्वार ?,
कहाँ नहीं है यह प्राण सूँघती ?
कहाँ न जाती, जन कौन छोड़ती ?

—अनूप (वर्द्धमान)

शरीर में तस्कर-तुल्य मृत्यु आ
न खींचती केवल श्वास अर्गला,
वरंच ताली नव जन्म की लगा
दिखा रही नूतन आत्मधाम है।

—अनूप (वर्द्धमान)

सब घड़ी, सबको, सब भाँति से
भय लगा रहता भव-व्याधि का;
मन रहस्य-निदर्शक भी गये
निधन का पर, भेद न पा सके।

—अनूप (सिद्धार्थ)

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

मनुष्य को जीवन-भीति से महा
कठोर है मृत्यु की विभीषिका सदा,
विभीत ऐसा द्रुत भागता, कि है
क्षण-प्रभा आकर पाँव चूमती।

—अनूप (वर्द्धमान)

चतुर्दिशा में धुंधला प्रकाश हो,
प्रलम्ब छाया गिर भूमि पड़े,
थकान हो, निर्बलता महान हो,
विचार देखा, तब मृत्यु आ गई।

—अनूप (वर्द्धमान)

विकट होता पहले प्रमोद है,
पुनश्च आशा करती प्रयाण है,
विभीति होती फिर नष्ट अन्त में,
स-धैर्य आती जब मृत्यु सामने।

—अनूप (वर्द्धमान)

मनुष्य को जीवन दे रही ज्वरा
तथा रही ले वह एक प्राण ही,
अतः डरे क्यो नर मृत्यु से कि जो
नितान्त आदान-प्रदान कार्य है।

—अनूप (वर्द्धमान)

प्रशान्त शूली पर मृत्यु भेंट ले,
नितान्त त्यागे, तन युद्ध भूमि में,
मनुष्य के हेतु मरे मनुष्य तो,
सुयोग्य संस्थान समाप्ति का यही।

—अनूप (वर्द्धमान)

दस दुवार जेहि पींजर मांहा। कैसे बांच मंजारी पाहाँ ?

—मलिक मुहम्मद जायसी (जायसी ग्रन्थावली)

परि पर्यंक घृणित अवसाना।
समर मरण सम अन्त न आना॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

जिस दिन मृत्यु की विभीषिका की ईति-भीति।
मानव के हिय से समूल हर जायेगी,
जिस दिन मृत्यु-जीवनैक्य की विचित्र छटा,
मानव के हिय में समुद भर जायेगी
पर-हित अर्थ प्राण-अर्पण की इच्छा जब,
मानव के हिय को स्ववश कर पायेगी,
तब मृत्यु - बंध - शैल - खंड खंड - खंड होगा,
चेतन की रुद्र धार झर - झर आयेगी।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (हम विषपायी जनम के)

यह मौत नहीं परिवर्तन है, इस काया के कल पुर्जों का।
हो अमर नाम के अभिलाषी,तो जीवन-ज्योति जलाता जा॥

—सत्यदेव परिव्राजक (अनुभव)

मौत से जो भागते हैं, जिन्दगी पाते नहीं वे।
फूल कल फल बन सकेगा इसलिए कुम्हलाय जीवन॥

—हरिकृष्ण प्रेमी (रूपरेखा)

मृत्यु, अरी चिर निद्रे! तेरा
अंक हिमानी-सा शीतल,
तू अनंत में लहर बनाती
काल जलधि की सी हलचल!

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी)

किस का तुम को दुःख? देह का? वह रज-कण है।
जीवन उसकी विकृति, और बस, प्रकृति मरण॥

—बलदेवप्रसाद मिश्र (साकेत संत)

जिनकी बदी है मीच अव, तिनकी न इत-उत बचहिगी।
जिनकी नहीं है विधि रची, तिनके न तन कों तचहिगी।।

—पद्माकर

भेटै घनंतर-से जु वैद, सु यों अनेक विधै करै।
पर काल है जिहि को जहाँ, तिहि को वहां ते नहि टरै।।

—पद्माकर

निर्भय स्वागत करो मृत्यु का, मृत्यु एक है विश्राम-स्थल।
जीव जहाँ से फिर चलता है, धारण कर नवजीवन-सम्बल।
मृत्यु एक सरिता है जिसमें, श्रम से कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है, काया रूपी वस्त्र वहाकर।।

—रामनरेश त्रिपाठी (स्वप्न)

द्वारहि पै लुटि जायगो बाग औ आतिसबाजी छिनै मैं जरैगी।
ह्वै हैं विदा टका लै हय-माथिहु खाय एकाय वरात फिरैगी।।
दान दै मानपिता छुटि है 'हरिचन्द' सखीहु न साथ करैगी।
गाय-बजाय जुदा सब ह्वै हैं अकेली पिया के तू पाले परैगी।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु ग्रन्थावली)

मृत्यो न किंचिच्छक्यस्त्वमेको मारयितुं बलात्।
मारणीयस्य कर्माणि तत्कर्तृणीति नेतरत्।।

(हे मृत्यु! तू स्वयं अपनी शक्ति से किसी मानव का वध नहीं कर सकती। मानव किसी दूसरे कारण से नहीं स्वयं स्वकर्मों से मारा जाता है।)

—योगवाशिष्ठ

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।
(सम्मानित मानव के लिए अपयश मृत्यु से भी बुरी है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

जो मरना जानते हैं उनके लिए मृत्यु भयंकर नहीं है।

—अज्ञात

देह का नष्ट होना मृत्यु नहीं है। मृत्यु है वास्तव में पापों की वासना।

—अज्ञात

वृद्ध मानव मृत्यु के निकट जाते हैं किन्तु युवकों के निकट मृत्यु स्वयं आती है।

—अज्ञात

जिसे देवता प्रेम करते है वह शीघ्र मरता है।

—अज्ञात

सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते॥

(मृत्यु साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और सुदूरवर्ती राह पर भी साथ-साथ जाकर साथ ही लौट आती है।)

—वाल्मीकि रामायण

मृत्यु उसकी मुक्तदायिनी है जिसे स्वाधीनता मुक्त नहीं कर सकती, यह उसकी चिकित्सक है जिसे औषध निरोग नहीं कर सकती, यह उसकी आनन्ददायिनी है जिसे काल सांत्वना प्रदान नहीं कर सकता।

—कोल्टन

भूख और प्यास से जितनों की मृत्यु होती है उनसे कहीं अधिक लोगों की मृत्यु अधिक भोजन और सुरापान से होती है।

—कहावत

मृत्यु भी धर्मनिष्ठ प्राणी की रक्षा करती है।

—कौटिल्य

जीने की एक राह है, मरने की सौ।

—कहावत

जीवन की चलती हुई तस्वीर के लिए मृत्यु ही एक समचित चौखट है।

—एक जर्मन दार्शनिक

मृत्यु का शोक जैसा बड़ा है उसकी शांति और माधुर्य भी वैसा ही बड़ा है।

—शरच्चन्द्र (गृहदाह)

अपमानपूर्ण जीवन से मृत्यु अच्छी है।

—कहावत

मृत्यु वह सोने की चाबी है, जो अमरत्व के भवन को खोल देती है।

—मिल्टन

मृत्यु से नया जीवन मिलता है। जो व्यक्ति और राष्ट्र मरना नहीं जानते वे जीना भी नहीं जानते।

—जवाहरलाल नेहरू

क्या मृत्यु अन्तिम निद्रा है ? नहीं, यह अन्तिम चेतावनी है।

—वाल्टर स्काट

मृत्यु जीवन से उतनी ही सम्बन्धित है, जितना जन्म।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मृत्यु सारे प्राणियों को भगवान् की दी हुई देन है। फर्क सिर्फ समय और तरीके का है।

—महात्मा गांधी

मृत्यु एक क्रांति है। मनुष्य के विकास के लिए जीवन जितनी ही मृत्यु आवश्यक है।

—महात्मा गांधी

जगत् हमारी देह से, चमड़े की भाँति अत्यन्त चिपटा हुआ था, बीच में कोई अन्तर नहीं था। जब मृत्यु प्रत्यक्ष आई तो वह जगत् हमसे दूर हो गया और प्रतीत हुआ कि जैसे वह हमसे अत्यन्त संलग्न था ही नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मृत्यु व अमृत)

वास्तव में जहाँ अहं है, वहीं मृत्यु का हाथ पहुँच सकता है, और कहीं नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मृत्यु व अमृत)

मृत्यु परिवेशन करती है, वितरण करती है। जो कहीं एक जगह बड़ा होकर उठना चाहता है, उसे सर्वत्र विस्तीर्ण कर देती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (वर्ष का अन्त)

मृत्यु ने जीवन की कठिनाई को रसमय बनाया है, उसके आकर्षण को विलग किया है, मृत्यु ही उसकी नीरस आँख में पानी ले आती है, उसकी पाषाण स्थिति से विचलित करती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (वर्ष का अन्त)

मृदुता

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेणयत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्मुदिम्नः स्फुटंफलम्॥

(अपराध के समान होने पर भी राहू भास्कर को चिरकाल बाद और चन्द्रमा को शीघ्र ही जो ग्रसता है, सो (चन्द्र की) मृदुता का ही स्पष्ट परिणाम है।)

—माघ

मैं

मैं नामक एक बड़ा-सा पत्थर है, उसका भार बड़ा भयानक है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मरण)

जब 'मैं' है तब हरि नहीं, हरि हैं तब मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में द्वै न समाहिं॥

—कबीर

मैं और मेरे पिता दोंनों एक हैं।

—महात्मा ईसा

हर एक को यह दावा है कि हम भी हैं कोई चीज।
और हमको है यह नाज़ कि हम कुछ भी नहीं हैं॥

—अकबर

जब मैं अपने गुण और दूसरे के दोषों को देखता हूँ तो मुझे मालूम होता है कि मैं कोई महात्मा नहीं तो साधू पुरुष अवश्य है। पर जब मैं अपने दोष और दूसरे के गुणों पर विचार करता हूँ तो सहसा कह उठता हूँ—"मो सम कौन कुटिल खल कामी"

—हरिभाऊ उपाध्याय

अहं ब्रह्मास्मि।
(मैं ब्रह्म हूँ।)

—बृहदारण्यकोपनिषद्

मैं ही अपने भाग्य का स्वामी हूँ और मैं ही अपनी आत्मा का सेनाध्यक्ष हूँ।

—हेनले

मेल

धूल में जाय मिल मिलन वह जो, मसलहत का महँग मसाला हो।
प्यार जो प्यार मतलबों का हो, मेल जो मोल जोल वाला हो॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय (चुभते चौपदे)

मेल बेमेल जाति से करके
हम मिटाते कलंक टीके हैं।
जाति है जा रही मिटी तो क्या
रंग में मस्त यूनिटी के हैं॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय (पद्म प्रसून)

मोक्ष

असक्तो ह्या चरन्कर्म परमाप्नोति पूरुष:।
(फल की इच्छा त्याग कर कर्म करने वाला पुरुष मोक्ष पाता है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

द्वे पदे बन्धमोक्षाय निर्ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते ॥

(बंधन और मोक्ष के दो ही आश्रय हैं—ममता और ममता-शून्यता, ममता से प्राणी बंधन में पड़ता है और ममता रहित होने पर मुक्त हो जाता है।)

—महाभारत

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ॥

(ज्ञान द्वारा जिनके पाप धुल गए हैं, वे प्रभु का ध्यान करने वाले, तन्मय हुए, उसमें स्थिर रहने वाले, 'उसी को सर्वस्व मानने वाले लोग मोक्ष पाते हैं।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

मोक्ष किसी स्थान पर रखा हुआ नहीं मिलता और न उसको ढूंढ़ने के लिए किसी दूसरे गाँव को ही जाना पड़ता है। हृदय की अज्ञानग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है।

—महाभारत

यदि इस जीवन मे मोक्ष नहीं मिल सकता, तो क्या आधार है कि तुम्हें वह अगले एक या अनेक जन्मों में मिलेगा।

—स्वामी विवेकानंद

हिरण्य, लक्ष्मी, बहु विश्व-सम्पदा,
अभीप्सिता इन्द्रिय-तृप्ति आयु भी,
क्षण प्रभा के समकक्ष हैं सभी,
अतः करो निश्चल सौख्य-साधना।

—अनूप (वर्द्धमान)

या भव-पारावार कौं, उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि छायाग्राहिनी, ग्रसै बीचहीं आइ ॥

—बिहारी (बिहारी रत्नाकर)

भाई, इन्द्रिय-भोग से गुरुतरा कोई नहीं वागुरा,
द्वेषी से बढ़ के न हो न जग में क्लेशी न आसक्त सा,
हिंसा से अधिका न दुष्कृति कहीं देखी गई विश्व में,
निर्वाणास्पद हैं वही निरत हों जो उक्त दुर्वृत्ति से।

—अनूप (सिद्धार्थ)

बसत न तात ! मोक्ष आकाशा । नहिं भूतल पातालहु वासा।
विमल गानसहि मोक्ष कहावा। आपहि माहिं मनुज तेहि पावा ॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

जब लगि भोग-निदाघ तें, व्याकुल तन मन नाहिं।
खोजत नहि तब लग मनुज, मोक्ष-महीरुह-छाँहि ॥
धर्म-युक्त कामार्थ, ताते बरनति तात ! श्रुति।
लहत न कोउ परमार्थ, लहे बिना पुरुषार्थ त्रय ॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

वे सभी लोग मोक्ष के अधिकारी हैं जो ईश्वर में विश्वास करते हैं और उसी की आज्ञाओं का पालन करते हैं।

—हजरत मुहम्मद साहब

मोक्ष वह है जो सिखाता है कि इहलोक और परलोक दोनों का सुख गुलामी है; क्योंकि इस प्रकृति के नियमों से परे न इहलोक है और न परलोक।

—विवेकानंद (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

बुद्धि का नाश ही मोह है, वह धर्म और अर्थ दोनों को नष्ट करता है, इससे मनुष्य में नास्तिकता आती है और वह दुराचार में प्रवृत्त हो जाता है।

—महाभारत-शांतिपर्व

मोह का लक्षण संग्रह और आग्रह है।

—जैनेन्द्र (प्रस्तुत प्रश्न)

विष-पाद पहुँ रोपि निज आँगन। करत न कोउ स्वकर उत्पाटन ॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

जहँ लग सब संसार है मिरण सबन को मोह।
सुर नर नाग पाताल अरु ऋषि मुनिवर सब मोह॥

—कबीर

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धरि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥

—तुलसीदास

राहु अवार्य भानु हित जैसे। मृत्यु अवार्य मर्त्य हित तैसे॥
चय परिणाम क्षयहिं जगमाहीं। कहँ प्रकर्ष अवनति जहँ नाहीं॥
जहाँ लाभ तहँ अन्तहू हानी। सकल तात! दुखान्त कहानी॥
मिलन जहाँ तहँ अन्त विछोहू। अस गुनि संत हृदय नहिं मोहू॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

का नर सोवत मोह निसा में, जागत नाहिं कूच नियराना।
पहिले नगारा सेत केस भी, दूजे बैन सुनत नहिं काना॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली)

यथा समुत्पन्न विहंग अंड से,
विहंग से संभव अंड का हुआ,
प्रसूत तृष्णा इस भाँति मोह से,
प्रभूत-तृष्णा-कृत मोह विश्व में।

—अनूप (वर्द्धमान)

मोह बधक भव वनि बसै, बाम बागुरा जानि।
रहै अटकि छूटै नहीं, मृग नर मूढ बखानि॥

—हेमराज (उपदेश शतक)

जानै कहावत है जग मैं जन जानै नहीं जम फांसि जरी को।
आपुन काल के जाल पर्यौ अरु चाहत और की राजसिरी को॥
देव सु दौरत दूरि तें नीच नगीच न देखत मीच रिरी को।
ही तकौं स्वान को स्वान बिली को बिलो तकै चूहा को चूहा रिरी को॥

—देव (देव शतक)

सुत कलत्र दुर्वचन जो भाषै। तिन्हें मोहवस मन नहिं राखै ॥
जो वै वचन और कोउ कहै। तिन कों सुनि के सहि नहिं रहै ॥
पुत्र अन्याइ करै बहुतेरे। पिता एक अवगुन नहिं हेरे ॥

—सूरदास (सूरसागर)

मोह ही भय का कारण है।

—अज्ञात

उनका मोह अपूर्व है, है दिवि उनकी देह।
जो करते हैं जगत के प्राणि-मात्र से स्नेह ॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध सतसई)

यथाशक्ति कोई नहीं, उस से करता द्रोह।
करता रहता है मनुज, स्वपरिवार का मोह ॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध सतसई)

पाप पुण्य तीखे मृदुल, जैसे कंटक फूल।
अनासक्तिही पुण्य है, मोह पाप का मूल ॥

—श्रीमन्नारायण (रजनी में प्रभात का अंकुर)

मौन

क्रोध को जीतने में मौन जितना सहायक होता है, उतनी और कोई भी वस्तु नहीं।

—महात्मा गांधी

मौन रहो और अपनी सुरक्षा करो। मौन कभी तुम्हारे साथ विश्वास-घात नहीं करेगा।

—जॉन ब्वायल

'अनन्त मौन की भाषा'।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि)

मौन सर्वोतम भाषण है। अगर बोलना ही चाहिए तो कम से कम बोलो। एक शब्द से काम चले तो दो नहीं।

—महात्मा गांधी

भय से उत्पन्न मौन पशुता और संयम से उत्पन्न मौन साधुता है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

विधाता ने मौन अर्थात् चुप रहना ही अज्ञानता का ढकना बनाया है। यह मनुष्य के आधीन है तथा इसमें और भी अनेक गुण हैं। यही ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों का आभूषण है।

—भर्तृहरि

बाद विवाद विष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहे सबकी सहै, सुमिरै नाम अगाध॥

—कबीर

जैसे घोंसला सोती हुई चिड़ियों को आश्रय देता है वैसे ही मौन तुम्हारी वाणी को आश्रय देगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

तोड़ो मौन की चट्टान, फोड़ो अहं का व्यवधान;
आकुल प्रान के रस-गान, भीतर ही न जायं मर।
बोलो, जोर से बोलो, व्यथा की ग्रंथियाँ खोलो,
संजोलो मन कि- फूटें, कण्ठ से फिर गीत के निर्झर।

—भारतभूषण अग्रवाल

वाणी का वर्चस्व रजत है किन्तु मौन कंचन है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

चींटी से अच्छा कोई उपदेश नहीं देता, और वह मौन रहती है।

—फ्रैंकलिन

नारी का मौन मनुष्य की वाणी के समान होता है, इससे कौन इंकार कर सकता है!

—बेन जानसन

मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक्शक्ति होती है।

—कार्लाइल

विश्राम मौन है।

—शेक्सपियर

मौन निद्रा के सदृश है। यह ज्ञान में नई स्फूर्ति पैदा करता है।

—बेकन

आपद् मे मौन रहना अति श्रेयस्कर है।

—ड्राइडेन

नारी में मौन सर्वोत्तम आभूषण है।

—कहावत

मौन बुद्धिमानी है और सखा बनाती है।

—कहावत

मौनं सम्मति लक्षणं।
(मौन सम्मति का चिह्न है।)

—कहावत

मौन उस अवस्था को कहते हैं जो वाक्य और विचार से परे है, शून्य ध्यानावस्था है।...मौन में ही अनन्त वाणी की ध्वनि है।

—अज्ञात

मौनावस्था में 'मैं' का लोप हो जाता है। फिर कौन सोचे और कौन बोले।

—अज्ञात

अप्रिय शब्द बोलने से मौन रहना अच्छा है।

—अज्ञात

अत्यन्त हर्ष हमें गूंगा बना देता है।

—अज्ञात

मौनावस्था में भगवद्भक्ति वेग से मानव की ओर बढ़ती है। मानव फिर देवस्वरूप होकर भगवद् रूप को प्राप्त होता है।

—अज्ञात

मौन एक बहुत शक्तिशाली अस्त्र है जिसे हममें से बहुत कम लोग व्यवहार में ला सकते हैं।

—अज्ञात

आओ हम मौन रहें ताकि फरिश्तों की कानाफूसियाँ सुन सकें।

—एमर्सन

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्नाप्यन्यायेन पृच्छतः।
ज्ञानवानपि मेधावी जड़वत्स भुपावि शेत्॥

(किसी के प्रश्न किए बिना न बोले तथा कोई अन्याय से कोई प्रश्न करता हो तब भी न बोले। मेधावी विद्वान् पुरुष मूर्ख पुरुष के समान व्यवहार करे।

—महाभारत

यंत्र

यंत्र और मशीनों के बिना मनुष्य इस जीवन के संघर्ष में जीवित ही नहीं रह सकता।

—विनायक दामोदर सावरकर

शरीर से देखने पर मनुष्य अत्यन्त दुर्बल है किन्तु केवल यंत्र के कारण ही वह प्रबलतम सिद्ध हुआ है।

—विनायक दामोदर सावरकर

यंत्र अभिशाप नहीं तो मनुष्य को अतिमानव बनानेवाला, विज्ञान का वरदान है।

—विनायक दामोदर सावरकर

यंत्र तो हमारी स्वाभाविक शक्ति की अपेक्षा लाख गुना अधिक शक्ति-युक्त बने हमारे बाह्य कर्मेन्द्रियाँ ही हैं । यदि उपकरण, यंत्र, मशीन न होतीं तो मनुष्य सृष्टि की शक्तियों पर आज जो हुकूमत चला रहा है, वह न चला पाता।

—विनायक दामोदर सावरकर

यज्ञ

यज्ञ अर्थात् परोपकारार्थ किए हुए कर्म भूत-मात्र ईश्वर की सृष्टि है। उसकी सेवा देशसेवा है। और वह यज्ञ है। —महात्मा गांधी

यज्ञ का अर्थ है मुख्यतः परोपकारार्थ शरीर का उपयोग।

—महात्मा गांधी

कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहि,
होमत हुताशन मैं कौन-सी बड़ाई है।
स्वर्ग-सुख मैं न चहौं, 'देहु मुझे' यौं न कहौं,
घास खाय रहौं मेरे यही मन भाई है।।
जो तू यह जानत है वेद यों बखानत है,
जग्य जलो जीव पावै स्वर्ग सुखदाई है।
डारै क्यों न वीर या मैं अपने कुटुंब ही कौं,
मोहि जनि जारै जगदीश की दुहाई है।।

—भूधरदास (जैन शतक)

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।

(जो मानव यज्ञ से बंचा हुआ खाने वाले हैं, वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

इयं ते यज्ञिया तंनूः।
(यह तेरी देह यज्ञ के लिए है।)

—यजुर्वेद

यो वाम् यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना॥

(जैसे नववधू वस्त्र से ढकी रहती है, वैसे ही जो यज्ञ से ढका रहता है, उसकी देखरेख करते हुए अश्विनी देव उसका मंगल करते हैं।)

—ऋग्वेद

दिवं ते धूपो गच्छतु स्वर्ज्योतिः।

(तेरा धूम (कर्म-ख्याति) स्वर्ग लोक तक पहुँच जाए और तेज अन्तरिक्ष तक।)

—यजुर्वेद

स्वर्यन्तो नापेक्षन्तऽआ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञंये विश्वतो धारं सुविद्वांसो वितेनिरे॥

(जो ज्ञान एवं कर्म के समन्वयकारी विद्वान् विश्व के धारण करने वाले सत्कर्म रूपी यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे स्वर्ग लोक में गमन करते हुए शोक रहित दिव्य स्थिति को प्राप्त होते हैं, उन्हें। फिर किसी की अपेक्षा नहीं रहती है।)

—यजुर्वेद

ज्योतिर् यज्ञेन कल्पतां, स्वर्यज्ञेन कल्पताम्।

(यज्ञ के प्रभाव से हमें परमज्योतिरूप ईश की प्राप्ति हो, स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति हो।)

—यजुर्वेद

क्षिद्रोहि यज्ञोभिन्न इवोदधिर्विसुवति।

(दूषित यज्ञ फूटे हुए जलाशय के समान बह जाता है)

—गोपथ ब्राह्मण

श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परंतप।

(हे अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञों से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

यश

सर्वे नन्दन्ति यशसागेत न सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विषस्पृत पितुषणि ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय॥

(यश सखा का कार्य करता है, वह सभा समाज में प्रधानता प्राप्त करता है। इसकी प्राप्ति पर सभी प्रसन्न होते है; क्योंकि यश के द्वारा दुर्नाम दूर होता है। अन्न प्राप्त होता है, शक्ति मिलती है और सब प्रकार से लाभ होता है।)

—ऋग्वेद

यश त्याग से मिलता है, धोखे-घड़ी से नहीं।

—प्रेमचन्द

धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न जासू॥

—मलिक मुहम्मद जायसी (जायसी ग्रन्थावली)

जूझत मानी मान-हित, धन-वसुधा हित नाहिं।
अमर सुयश, त्रिभुवन-विभव विनसत निमिषहि माहि॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

जसरीं गत अद्भुत जिका, सत धारियां सुहाय।
नर जीवै नरलोक में, जस अमरापुर जाय॥

—बांकीदास (बांकीदास ग्रन्थावली)

वही यहाँ जीवित कीर्ति युक्त जो
वही यहाँ जीवित है, यशस्वि जो
अकीर्ति संयुक्त यशास्विता विना
मनुष्य का जीवन मृत्यु-तुल्य है।

—अनूप (वर्द्धमान)

हम्मीर राव हँसि यों कहै, सदा कौन जग थिर रहै।
छिन भंग अंग लालच कहा, सुजस एक जुग-जुग रहै॥

—जोधराज (हम्मीर रासो)

कब्र पर यश का देवालय खड़ा होता है और मृतक की राख से उस पर चिराग जलता है।

—हैजलिट

केवल निष्पक्ष व्यक्ति के कर्म ही मधुर सुगन्धमय फल देते हैं और धूल में भी विकसित होते हैं।

—शर्ले

यश की राह स्वर्ग की राह के तुल्य बहुत ही कष्टदायक है।

—स्टर्न

जो विचारशील हैं उनका सिद्धान्त है कि यश और सत्कार्य का वही सम्बन्ध है जो धुआं और अग्नि का।

—अज्ञात

धन तो काल पाकर नष्ट हो जाता है, पर यश रूपी धन अक्षय है, इसे काल भी नष्ट नहीं कर सकता।

—अज्ञात

यश-प्राप्ति की मधुर आशा, मानव को जन्म भर सुपथ पर चलाया करती है।

—अज्ञात

याचक

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः।
वायुना किम् न नीतोऽसौमभायं याचयिष्यति॥

(तृण हलका होता है, तृण से हल्की रूई होती है, रूई से भी हलका याचक होता है, वायु उसको इसी कारण से नहीं उड़ाती कि कहीं यह मुझसे भी कुछ न माँगने लगे।)

—चाणक्य

भिक्षुक बालक भारजा, पुनि भूपति यह चार।
अस्ति नास्ति जाने न कछु, देही देहि पुकार।।

—गिरिधर कविराय (कुंडलियाँ)

तृन हू तैं अरु तूल तैं, हरवौ जाचक आहि।
जानतु है कछु मांगि है, पवन उड़ावत नाहि।।

—वृन्द (वृन्द सतसई)

याचना

मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज।।

—कबीर (कबीर ग्रंथावली)

माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग वसुधा करी, तऊ बावनै नाम।।

—रहीम (रहिमन विलास)

सेवेव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्।
हरिहर कथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति।।

(जैसे सेवा सब मान को, चंद्र ज्योत्स्ना अंधकार को, वृद्धावस्था सुन्दरता को, और विष्णु तथा महादेव की कथा पापों को हरती है वैसे ही याचना सैकड़ों गुणों को हर लेती है।)

—हितोपदेश

वरं विभवहीनेन प्राणैः संतर्पितोनलः।
नोपचार परिभ्रष्टः कृपणः प्रार्थितो जनः।।

(धनहीन मानव प्राणों को अग्नि में झोंक दे तो अच्छा, किन्तु अपने मान को छोड़कर कृपण मानव से याचना करना अच्छा नहीं है।)

—हितोपदेश

याञ्चा मोधा वरमधिगुणो नाधमे लब्धकामा।

(सज्जन से निष्फल याचना भी अच्छी है पर दुर्जन से सफल याचना भी सच्छी नहीं।)

—कालिदास

निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्धनं नार्दति चातकोऽपि।

(पपीहा भी बिना जलवाले मेघों से पानी नहीं माँगता।)

—कालिदास

यात्रा—यात्री

यात्रा में सत्संगति राह को छोटा बना देती है।

—अज्ञात

अनुभवहीन यात्री पंख रहित पक्षी के समान है।

—सादी

याद

दुख की याद वर्तमान खुशी को मधुर बना देती है।

—पोलक

याद ही सिर्फ ऐसा स्वर्ग है जहाँ से हम कभी भगाए नहीं जा सकते।

—रिचर

याद पंख है, जो प्राण के पक्षी को जीवन के उच्चतर गगन में उड़ने का पुरुषार्थ देती है।

—अज्ञात

याद हमारे जीवन को हरा-भरा रखने के लिए हमारे साथ ईश्वर का पक्षपात है।

—अज्ञात

युग

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी।
सजग रहो, इस से दुर्बलता और दीनता होगी।।
जिस युग में हम हुए वही तो अपने लिए बड़ा है।
अहा, हमारे आगे कितना कर्म-क्षेत्र पड़ा है।।

—मैथिलीशरण गुप्त (द्वापर)

कलि-कलि कर बैठो न निराश, पहनो स्वयं न उसका पाश।
पहले भी थे राक्षस-दैत्य, कविनिर्विघ्न चले मठ चैत्य।।
अपना मन है जिनके हाथ, जीवन जय है उनके साथ।
कोई युग हो कोई लोक, उनको कहीं न दुःख न शोक।।
कहीं-कहीं सतयुग भी तर्ज्य, आज पूर्व विधियाँ भी कार्य।
बनो विवेकी विश्रुत हंस, जल छोड़ो पय पियो प्रशंस।।
देशकाल युग उदय कि अस्त, आप भले तो भले समस्त।
डरो न युग से हटो समक्ष, अक्षय है आत्मा का पक्ष।।
तुम को हो विश्वास सुजान, तो कलजुग सम जुग नसि आन।

—मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दू)

युवक

युवक युवावस्थाओं में कितना उद्दण्ड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिन्तित रहते हैं। वे उसे कुल-कलंक समझते हैं, परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पड़ते ही वह अव्यवस्थित चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शांत चित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

—प्रेमचन्द (परमेश्वर)

युवकों के प्रेम में अद्विग्नता होती है, वृद्धों का प्रेम हृदय विदारक होता है। युवक जिससे प्रेम करता है, उससे प्रेम की आशा भी रखता है। अगर उसे प्रेम के बदले प्रेम न मिले, तो वह प्रेम को हृदय से निकाल कर फेंक देगा।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

वास्तव में किसी युवक को उपदेश करने का अधिकार नहीं है, चाहे उसकी कवित्व शक्ति कितनी ही विलक्षण हो। उपदेश करना सिद्ध पुरुषों का ही काम है। यह नहीं कि जिसे जरा तुकबंदी आ गई, वह लगा शांति, संतोष और अहिंसा का पाठ पढ़ाने। जो बात दूसरों को सिखलाना चाहते हो, वह पहले स्वयं सीख लो।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

जवान आदमियों को बीस शौक होते हैं। हँसने बोलने के लिए, गाने बजाने के लिए भी तो उसे कुछ समय चाहिए। वृद्धजनों के लिए वे बाधाएँ नहीं हैं। उन्हें न नाच गाने से मतलब, न खेल तमाशों से गरज, केवल अपने काम से काम है।

—प्रेमचन्द (सुजान भगत)

जवान वह है जो भोजन के उपरांत फिर भोजन करे, ईंट पत्थर तक भक्षण कर ले। जो एक बार जलपान करके फिर कुछ नहीं खा सकता, जिसके लिए कुकड़ा वादी है, करेला गर्म, कटहल गरिष्ठ, उसे मैं बूढ़ा ही समझता हूँ।

—प्रेमचन्द (प्रेमाश्रम)

देश-प्रेम से उमड़ रहा हो
जिनकी वाणी में जय-जयास्वर,
हमको ऐसे युवक चाहिए
सकें देश का जो संकट हर।

—सोहनलाल द्विवेदी (युगाधार)

जवानों को अपनी ताकत का नशा होता है।

—प्रेमचन्द (हिंसा परमोधर्मः)

डरैं न काहू दुष्ट सों, लरैं लोभ तन खोय।
करै न शंका काल की, युवक सराहिय सोय॥

—रामेश्वर करुण (करुण सतसई)

सावधान हे युवक उमंगो सावधानता रखना खूब।
युवा समय के महा मनोहर विषयों में जाना मत डूब॥
सर्व काज करने के पहले पूछो अपने दिल से आप।
'इसका करना इस दुनिया में पुण्य मानते हैं या पाप॥'

—गुजराती बाई

युवक जो ऊपर नहीं देखता नीचे देखेगा; आत्मा जो आकाश में नहीं उड़ती विनीत हो जाती है।

—डिजरायली

युवती

कोमलांगी युवती आगे बढ़े, तो कौन पुरुष पीछे कदम हटायेगा।

—प्रेमचन्द (सती)

युवती के लिए पति कैसी-कैसी मधुर कल्पनाओं का स्रोत होता है, पुरुष में जो उत्तम है, श्रेष्ठ है, दर्शनीय है, उसकी सजीव मूर्ति इस शब्द के ध्यान में आते ही उसकी नज़रों के सामने आकर खड़ी हो जाती है।

—प्रेमचन्द (नरक का मार्ग)

लड़के नंगे पाँव पढ़ने जा सकते हैं, चौका बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, झोंपड़े में दिन काटे जा सकते हैं; लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बैठाई जा सकती है।

—प्रेमचन्द (निर्मला)

स्त्री (युवती) सब कुछ सह सकती है, दारुण से दारुण दुःख: बड़े से बड़ा संकट, अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवन काल की उमंगों का कुचला जाना।

—प्रेमचन्द (नरक का स्वर्ग)

युवावस्था

युवावस्था आवेशमय होती है, क्रोध से आग हो जाती है, तो करुणा से पानी भी हो जाती है।

— प्रेमचन्द (बैर का अंत)

युवावस्था में एकान्तवास चरित्र के लिए बहुत ही हानिकारक है। खुली हवा में चरित्र के भ्रष्ट होने की उससे कहीं कम सम्भावना है, जितना बंद कमरे में। बच्चे को कुसंगत से जरूर बचाइए, मगर यह नहीं कि उसे घर से निकलने ही न दीजिए।

—प्रेमचन्द (निर्मला)

ज़्वाला-गिरि की ज्वालाएँ, ज्यों अम्बर में इठलातीं;
यौवन की तरल तरंगें, त्यों ताबड़-तोड़ मचातीं!
अत्याचारों को चुन कर, सीमा से परे ढकेलें;
मदमस्ती का मद मारें, जब यौवन खुल कर खेलें।
सत्ता के तोप तमंचे, पत्ता से फट-फट जाते;
यौवन की छलक छबीली, जब युवक हृदय दिखलाते!
दानवता के हाथों से, मानवता वहाँ न मरती,
जन-जन की जहाँ जवानी, बन-बन कर वीर विचाती!

—रामेश्वर करुण (करुण सतसई)

युद्ध (दे० लड़ाई)

युद्ध की विधि भी विजय का आधार है।

—अज्ञात

विविधता जब प्रबल होती है, लड़ाई के देवता रोते हैं;
दुनिया को एक करने की सनक से युद्ध उत्पन्न होते हैं।

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

तुम जिसे मानते आए हो, उद्देश्य सभी से अच्छा है,
जन्मे हो जहाँ, जगत् भर में वह देश सभी से अच्छा है।
तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाति,सदा यह हठ पवित्र करते जाओ।
इस अहंकार के पालन में, मारते और मरते जाओ।
जो नहीं मानता होतुमको,ठानो उस अभिमानी से रण।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (चक्रवाल)

जीवैं सो घर भुग्गि यैं, जुज्झै सुरपुर वास।
दोऊ जस कित्ती अमर,तजो मोह जगआस॥

—जोधराज (हम्मीर रासो)

भाजि न जाइ देखि करि, रण आवत भरिपूर।
'परसु राम' छाँड़े नहीं, जँह पग मंडे सूर॥

—परशुराम सागर

औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार विनु पार।
सनमुख जे उतरे, तरे, परे विमुख मंझधार॥
धनि-धनि सो सुकृती व्रती, सूर-सूर सतसंघ।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै, खेलतु जासु कवंघ॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई)

मानुष देही जह दुर्लभ है, भैओ जन्म न वारम्वार।
तुम ना भजिओ समर भुम्मि ते, कह फिरि चढ़ै वीर चौहान।

—जगनिक (आल्ह खंड)

हिंसक युद्ध की प्रेरणा एक गहरे हीनाभाव में से आती है। दूसरे शब्दों में उसकी जड़ में आतंक या भय होता है। इसीसे फल में शेखी और उद्दण्डता देखने में आती है।

—जैनेन्द्र

भाजि न जैओ तुम मोहरा से, बुड़िहै साति साख को नाम।
जहु दिन कहिबे कौरहि जैहै, यारो लाज तुम्हारे हाथ।

—जगनिक (आल्ह खंड)

भोला की डर भागियौ, अंत न पहुड़ै ऐण।
बीजी दीठां कुल वहू, नीचा करसी नैठा।।

—सूर्यमल्ल (वीर सतसई)

जब मानव का युद्ध अपने-आप के साथ शुरू होता है तब उसका कुछ मूल्य होता है।

—ब्राउनिंग

युद्ध ऐसा पेशा है, जिसमें मानव सम्मानपूर्वक नहीं रह सकता। यह ऐसी चाकरी है, जिसमें लोभ कमाने के लिए सैनिक को छली, लुटेरा और क्रूर बनना पड़ता है।

—मेकियावेली

सामूहिक हत्या का ही नाम युद्ध है।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

युद्ध में शामिल होना धर्म के विरुद्ध आचरण करना है।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

युद्ध हमसे हमारी इंसानियत को ही छीन लेता है।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

जनमत का दवाव ही सरकार को युद्ध क्षेत्र से विमुख कर सकता है।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

संग्रामो वै क्रूरं। संग्रामे हि क्रूरं क्रियते।
(युद्ध क्रूर होता है। युद्ध में क्रूर काम किए जाते हैं।)

—शतपथ ब्राह्मण

युग की बड़ी-बड़ी समस्याओं का निर्णय भाषण और वोट से नहीं बल्कि रक्त और खड्ग से होता है।

—बिस्मार्क

लड़ाई में सत्य सदैव खो जाता है।

—साइरस

युद्ध में सत्य की हत्या सब से पहले होती है।

—कहावत

झूठी लड़ाई में सच्ची वीरता नहीं होती।

—शेक्सपियर

मित्रामात्य सुहृद्वर्गा यदा स्युर्दृढभक्तयः।
शत्रूनां विपरीताश्च कर्त्तव्यो विग्रहस्तदा॥

(मित्र, मंत्री और आपस के लोग जब दृढ़ शुभचिंतक हों और शत्रुओं के विपरीत हों, तब लड़ाई करनी चाहिए।)

—हितोपदेश

विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं।

—बर्नार्डशा

भूमिर्मित्रं हिरण्यं च विग्रहस्य फलं त्रयं।
यदैतन्निश्चितं भावि कर्तव्यो विग्रहस्तदा॥

(राज्य, मित्र और सुवर्ण यह तीन लड़ाई के बीज हैं, जब यह तीनों निश्चित हो जायें तब लड़ाई करनी चाहिए।)

—हितोपदेश

धर्म-युद्ध में मरने के बाद में भी बहुत कुछ बाकी रह जाता है; हार को पार करके मिलती है जीत, और मृत्यु को पार करके मिलता है अमृत।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

युद्ध असभ्य लोगों का व्यापार है।

—नेपोलियन

हम सब की अपनी-अपनी शांतियों की चिन्ता ही युद्ध की सामग्री और अवसर बनती है।

—जैनेन्द्र

युद्ध काल में सबसे आवश्यक तत्त्व है, भय। भय के लिए धरती ईर्ष्या और घृणा ही चाहिए। इन सब के संयोग बिना शत्रु से लड़ाई न होगी।

—जैनेन्द्र

युद्ध को वे दिव्य कहते हैं जिन्होंने,
युद्ध की ज्वाला कभी जानी नहीं है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (नये सुभाषित)

श्वानरारि नृप-युद्ध मोहिं, लागत एक समान।
मही खण्डहित नृप लरत, मांस-खण्ड हित श्वान।

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

बज रहा बिगुल निनादित घोष
फूंक दो बंशी के फिर श्वास
युद्ध और शांति यही दो गीत
आज तक मानव के इतिहास

—रांगेय राघव (मेधावी)

होत, भये, ह्वै हैं सदा, सकै न कोई थाम।
रोटी के बिन विश्व में, नर नाशक संग्राम॥

—रामेश्वर करुण (करुण सतसई)

योग-योगी

आत्मसाक्षात्कार का एकमात्र उपाय योग है।

—सम्पूर्णानन्द (चिद्विलास)

योगी डूबे योग में, भोगी डूबे भोग।
योग भोग जाके नहीं, सो विद्वान अरोग॥

—गिरिधर कविराय (कुंडलियाँ)

योग किसे कहते हैं सो मैं नहीं जानती, यदि वह निर्जन स्थान में बैठ कर सिर्फ आत्म-विश्लेषण और आत्म-चिन्तन करना ही है तो मैं वही बात जोर के साथ कहूँगी कि इन दो सह द्वारों से जितने भ्रम और जितने मोह ने प्रवेश किया है, उतना और कहीं से नहीं। ये दोनों अज्ञान के ही सह-चर हैं।

—शरच्चन्द्र (शेष प्रश्न)

प्रेम के साथ प्रेम द्वारा ही योग हो सकता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (त्याग का फल)

कन्या मो जोगी सब नाहीं, ठग हैं बहुत न चीन्हें जाहीं।

—नूरमुहम्मद (इन्द्रावती)

तपी न होहिं भेस के कहें, रंग दुकूल माला के लिहें।
उज्जल वास बीच भल जोगू, रहें छिपान, न चीन्हें लोगू॥
सुमिरन ध्यान राति दिन चाहै, इहै तपस्या पूरन आहै॥

—नूरमुहम्मद (अनुराग बाँसुरी)

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।
(चित्त की वृत्तियों को वश में रखना ही योग है।)

—पंतजलि

सभी चिन्ताओं का परित्याग कर निश्चिन्त हो जाना ही योग है।

—योगशास्त्र

योगः कर्मसु कौशलम्।
(कार्य में कुशलता को योग कहते हैं।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(सर्वत्र समभाव रखने वाला योगी अपने को सब भूतों में और सब भूतों को अपने में देखता है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मेन प्रणश्यति ।।

(जो मूर्ख सब जगह देखता है और सबको मुझमें देखता है, वह मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होता और मैं उसकी दृष्टि से ओझल नहीं होता।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखंवायदि वा दुःखं सयोगी परमो मतः ।।

(जो अपने समान सबको देखता हैऔर सुख हो अथवा दुःख दोनों को समान समझता है, वह योगी श्रेष्ठ गिना जाता है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्ना व बोधस्य योगोभवति दुःखहा ।।

(जो मनुष्य आहार-विहार में, दूसरे कामों में, सोने जागने में परिमित रहता है, उसका योग दुःखभंजन हो जाता है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्ययोगाग्निमयशरीरं।

(जिसने योगाभ्यास की अग्नि से स्वशरीर को खूब तपा लिया, उसे फिर न रोग सताता है, न बुढ़ापा। मृत्यु भी उसके समीप आती डरती है।)

—उपनिषद्

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगोहि प्रभवाप्ययौ ।।

(इंद्रियों की स्थिरता को ही योग माना गया है। जिसकी इंद्रियां स्थिर हो जाती हैं, वह अप्रमत्त हो जाता है। योग का अभिप्राय है प्रभव तथा शुद्ध संस्कारों की उत्पत्ति एवं अशुद्ध का विनाश।)

—कठोपनिषद्

अन्यस्य चित्तमभि संचेरण्यमुताधीतं वि नश्यति ।

(जिन मानवों का मन चंचल है, वे भलीभांति चिन्तन किए हुए को भी भूल जाते हैं।)

—ऋग्वेद

लघुत्वमारोऽग्यमलोलुपत्वं,
वर्णप्रसादं स्वर सौष्ठव च ।
गन्धः शुभो मूत्र-पुरीषमल्पं,
योगप्रवृत्ति प्रथमां वदन्ति ॥

(योग में प्रवृत्ति करने का प्रथम फल यही होता है कि योगी की देह हल्की हो जाती है, नीरोग हो जाती है, विषयों की लालसा मिट जाती है, शोभा (कांति) बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है, देह से सुगन्धि निकलने लगती है और मलमूत्र थोड़ा हो जाता है।)

—श्वेताश्वतर उपनिषद्

समत्वं योग उच्यते ।

(समत्व ही योग कहा जाता है। अर्थात् हानि-लाभ, सुख-दुःखादि में समभाव रखना, विचलित न होना ही वास्तविक योग है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥

(समत्वबुद्धि से युक्त होने पर मानव दोनों ही तरह के शुभाशुभ कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है। अतः हे पार्थ ! तू समत्वरूप ज्ञानयोग में लग जा, समभाव के साथ कुशल कर्मों में कुशल होने का नाम ही योग है।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

ध्यानं निर्विषयं मनः ।

(मन का विषयशून्य हो जाना ही ध्यान है।)

—सांख्यदर्शन

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शांतिरशान्तस्य कुतः सुखं॥

(जो योगाभ्यासी विजितेन्द्रिय नहीं है, उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती योग की साधना से रहित मानव मित्रता, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य भावनाओं से भी रहित होता है। जो भावनाओं से रहित होता है, उसे शांति नहीं मिलती और जो अशान्त है, उसे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है?)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्तिन चैकान्तमन श्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

(हे अर्जुन! जो बहुत अधिक खाता है अथवा बिल्कुल नहीं खाता है, जो बहुत सोता है अथवा बिल्कुल नहीं सोता है सदैव जाग्रत रहता है, उसकी योग साधना सिद्ध नहीं हो सकती।)

—श्रीकृष्ण (भगवद्गीता)

रागोपहतिर्ध्यानं।

(विषयों के प्रति होने वाले राग भाव को दूर करने वाला एकमात्र ध्यान है।)

—सांख्यदर्शन

योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः।

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।)

—योगदर्शन

अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

(निरन्तर साधना और वैराग्य चित्तवृत्तियों का निरोध करता है।)

—योगदर्शन

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रिया योगः।

(तप, स्वाध्याय और ईशप्रणिधान (निष्काम भाव से ईश-भक्ति, तल्लीनता) यह तीन प्रकार का क्रिया योग है।)

—योगदर्शन

यत्रैकाग्रता तत्ताविशेषात् ।

(जहाँ भी मन की एकाग्रता सरलता से हो सके, वहीं बैठ कर ध्यान का अभ्यास करना ठीक है, साधना हेतु किसी विशेष स्थान अथवा दिशादि की कोई प्रतिबद्धता नहीं है ।)

—वेदान्त दर्शन

योग्य

योग्य नहीं बनोगे तो योग्यता का पारितोषिक तुम्हें कौन देगा ? अयोग्य होने पर भी किसी प्रकार यदि तुम योग्यता का पुरस्कार पा ही गए तो वह कितने दिन रहेगा तुम्हारे पास ? श्रीमंतों के कपूतों की भाँति पलक मारते न मारते लक्ष्मी गायब हो जायेगी ।

—शरच्चन्द्र (आगामी काल)

आँधियाँ और सागर लहरें निरन्तर सबसे योग्य नाविकों का साथ देती हैं ।

—गिबन

जो स्वयं को योग्य समझते हैं, वे योग्य हैं ।

—वर्जिल

योग्य मनुष्य के लिए धन और यश की कमी नहीं रहती ।

—अज्ञात

योग्यता

योग्यता के अभाव में यदि हम परस्पर मिलना-जुलना बंद कर दें तब तो हम में से बहुतों को अज्ञातवास का व्रत लेना पड़ेगा ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नौका डूबी)

अपनी योग्यता को छिपाने के लिए भी बड़ी योग्यता की आवश्यकता होती है ।

—ला रोशेफो

बिना अवसर प्राप्त हुए योग्यता से लाभ कम होता है।

—नेपोलियन

केवल सफेद बाल सिकुड़ी हुई खाल और पोपला मुँह या झुकी हुई कमर किसी को आदर का पात्र नहीं बना देती। न जनेऊ या तिलक या पंडित या शर्मा की उपाधि ही भक्ति की वस्तु है।

—प्रेमचन्द

बिना अवसर प्राप्त हुए योग्यता से लाभ कम होता है।

—नेपोलियन

जिसमें अच्छी सेवा की योग्यता है, ऐसा व्यक्ति कभी बुरा नहीं हो सकता है।

—बर्क

योग्यता के अनुसार हर व्यक्ति को न मिलकर उसकी आवश्यकता के अनुसार उसको मिलना चाहिए।

—कार्लमार्क्स

यौवन (दे० जवानी)

यौवन का शक्ति-प्रवाह बहुधा बौद्धिक नेत्रों की दृष्टि ज्योति को हरण कर लेता है, मानव की सूझ-बूझ सतर्कता पर पानी फेर देती है।

—अज्ञात

यौवन धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किम् यत्र चतुष्टयम्॥

(यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व और अविवेक—इन चारों में से एक भी अनर्थकारी होता है। जहाँ ये चारों होते हैं, वहाँ की तो बात ही क्या?)

—हितोपदेश

यौवन एक निरन्तर मादकता है, यह बुद्धि का ज्वर है।

—लारीशोकी

युवावस्था बहुत सुन्दर है, संदेह नहीं; पर जहाँ जीवन की गहनता की जाँच होती है, वहाँ यौवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

—दास्ताएव्सकी

जीवन और लक्ष्मी की तरह यौवन को भी जाते देर नहीं लगती।

—अज्ञात

तरुणाई की नई उमंग ऐसी वस्तु है कि उसके जोश में आकर मानव पर्वत को भी चूर-चूर कर सकता है।

—अज्ञात

जाई जोवन घन मसलै हाथ। जोवन नवि गिणइ दीह ते राति।
जोवन राख्यो नु रहई। जोवन प्रिय विण होसीय छार॥

—नरपति नाल्ह (वीसलदेव रासो)

खैंचत लोभ दसौ दिसि को गहि मोह महा इत फाँसिहि डारे।
ऊँचे ते गर्व गिरावत क्रोधहु जीवहि लूहर लावत भारे॥
ऐसे में कोढ़ की खाज क्यों 'केशव' मारत कामहु वाण निनारे।
मारत पांच करे पंच कूटहि कासों कहैं जग जीव विचारे॥

—केशवदास (रामचन्द्रिका)

इक भीजैं चहलैं परैं, बूढ़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करैं, वै नै चढ़ती बार॥

—बिहारी (बिहारी रत्नाकर)

कट जाती बंधन की कड़ियाँ, क्रान्ति उदय होती है,
जब यौवन जीवन-पथ पर तूफान लिए आता है।

—डॉ० रामदरश मिश्र (पथ के गीत)

हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन!

—बच्चन (अभिनव सोपान)

सरद तें जल की ज्यों दिन में कमल की ज्यों,
धन तें ज्यों थल की निपट सरसाई है।
धन तें सावन की ज्यों आप तें रतन की ज्यों,
गुन तें सुजन की ज्यों परम सुहाई है॥
'चितामनि' कहै आछे अच्छरन छंद की ज्यों,
निसागम चन्द की ज्यों दृग सुखदाई है।
नग तें ज्यों कंचन वसंत तें ज्यों बन की,
यों जोवन तें तन की निकाई अधिकाई है॥

—चिंतामनि (कविता कौमुदी)

जोबन-जल दिन-दिन जस घटा। भँवर छपान, हंस परगटा॥
सुभर सरोवर जौ लहि नीरा। बहु आदर, पंखी बहु तीरा॥
नीर घटे पुनि पूछ न कोई। विरसि जो लीज हाथ रह सोई॥

—मलिकमुहम्मद जायसी (जायसी ग्रन्थावली)

यौवन क्या जिसके मुख पर, लहराता शोणित रंग नहीं?
यौवन क्या जिसमें आगे बढ़ने की अमर उमंग नहीं!
शैशव ही सुखमय है उस यौवन के आने के पहले?
मर-मर कर जीने की जिसमें उठती तरल उमंग नहीं।

—सोहनलाल द्विवेदी (युगाधार)

पड़ी समय से होड़, खींच मत तलवों से काँटे झुककर।
फूँक-फूँक चलती न जवानी चोटों से बचकर झुककर॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (चक्रवाल)

मस्ती क्या जिसको पाकर फिर दुनिया की याद रही?
डरने लगी मरण से तो फिर चढ़ती हुई जवानी क्या?

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

यौवन विकारों को जीतने के लिए मिला है। उसे हम व्यर्थ ही न जाने दें।

—महात्मा गांधी

मनुष्य जीना बहुकाल चाहता,
न वृद्ध होना वह याचता कभी,
गई न आई युवती दशा वही,
न आ गई, है जरठा दशा वहीं।

—अनूप (वर्द्धमान)

सत्ता के तोप तमंचे
पत्ता से फट फट जाते,
यौवन की छलक छबीली,
जब युवक हृदय दिखलाते।
दानवता के हाथों से
मानवता तहाँ न मरती,
जन-जन की जहाँ जवानी
बन-बनकर वीर विचरती।

—रामेश्वर करुण (चिंगारी)

यौवनकाल की दुर्वासनाएँ बड़ी प्रबल होती हैं।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

जवानी में कौन नहीं सुन्दर होता।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

यौवन प्रेम और लालसाओं का समय है। इस अवस्था में मीना-बाजार की सैर मन में विप्लव मचा देती है। जो सुदृढ़ हैं, लज्जाशील या भावशून्य हैं, वह सम्भल जाते हैं। शेष फिसलते हैं और गिर पड़ते हैं।

—प्रेमचन्द (वरदान)

कोऊ रोग शरीरे सताय न सके सदा बड़ी जोम रहे तन में।
तरुणीन ते भोग-विलास करैं पुनि भारी भँडार भरे धन में।।
बहु वंश बढ़ाय कमाय घनौ रुपि रारि करै रिपु सों रन में।
कविराय गुपाल विचारि कहैं इतने सुख हैं तरुणापन में।।

—गुपालराय (दंपति वाक्य विलास)

जवानी जोश है, बल है, दया है, साहस है, आत्म-विश्वास है गौरव है, और सब कुछ जो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है। जवानी का नशा घमण्ड है, निर्दयता है, स्वार्थ है, शेखी है, विषय वासना है, कटुता है और सब कुछ जो जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता है।

—प्रेमचन्द (घासवाली)

जवानी दीवानी होती है।

—प्रेमचन्द (प्रतिज्ञा)

जीवन में आया हुआ यौवन समय की राह नहीं ताका करता, वह तो आँधी के उन आमों के समान होता है जो कि तीव्र झोंके के लगते ही शाखा को छोड़कर धरा में लोटने लगते हैं।

—शरण (दीया लौ और बाती)

यौवन को प्रेम की इतनी क्षुधा नहीं होती, जितनी आत्म-प्रदर्शन की। प्रेम की क्षुधा पीछे आती है।

—प्रेमचन्द (गबन)

यौवन प्रौढ़ होकर और भी अजेय हो जाता है। चन्द्रमा का पूरा प्रकाश भी तो पूर्णिमा ही को होता है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

यौवनकाल जीवन का स्वर्ग है। बाल्यकाल में यदि हम कल्पनाओं के राग गाते हैं, तो यौवनकाल में हम उन्हीं कल्पनाओं का प्रत्यक्ष स्वरूप देखते हैं। और वृद्धावस्था में उसी स्वरूप का स्वप्न। कल्पना अपंग होती है। स्वप्न मिथ्या, जीवन का सार केवल प्रत्यक्ष में है। हमारी दैहिक, और मानसिक शक्ति का विकास यौवन है। यदि समस्त संसार की सम्पदा एक ओर रख दी जाए, और यौवन दूसरी ओर, तो ऐसा कौन प्राणी है, जो इस विपुल धनराशि की ओर आँख उठाकर भी देखे। वास्तव में यौवन ही जीवन का स्वर्ग है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

संसार की सबसे उत्तम देव-दुर्लभ वस्तु यौवन है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न यौवन थिर रहे, सदा न जीवे कोय॥

—अज्ञात

युवावस्था आवेशमय होती है, क्रोध से आग हो जाती है तो करुणा से पानी भी हो जाती है।

—प्रेमचन्द

रक्षा

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥

(विपत्ति के लिए धन को बचाना चाहिए, धन से पत्नी को बचाना चाहिए, पत्नी और धन से सदैव स्वयं को बचाना चाहिए।)

—चाणक्य

शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्ष्यं न तद्यशः शास्त्र भृतांक्षिणोति।

(जिसकी शस्त्रों से रक्षा हो ही नहीं सकती, उसकी यदि शस्त्रधारी रक्षा न कर सकें तो इससे उसका अपयश नहीं होता।)

—कालिदास

रमणी

रमणी ! तेरे हास में जीवन-स्रोत का संगीत है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रत्न-जटित मखमली म्यान में जैसे तेज तलवार छिपी रहती है, जल के कोमल प्रवाह में जैसे असीम शक्ति छिपी रहती है वैसे ही रमणी का कोमल हृदय साहस और धैर्य को अपनी गोद में छिपाये रहता है।

—प्रेमचन्द

रमणी की कातर दृष्टि में जो बल, जो कर्तृत्व-शक्ति है, वह मानव-शक्ति की संचालक है।

—जयशंकर प्रसाद

रमणी का अनुराग कोमल होने पर भी वड़ा दृढ़ होता है। वह सहज में छिन्न नहीं होता। जव वह एक बार किसी पर मरती है तव उसीके पीछे मिटती भी है।

—जयशंकर प्रसाद (जनमेजय का नागयज्ञ)

रमणीयता

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।

(क्षण-क्षण में जो वस्तु को अपूर्व सुन्दरता या नवीनता प्राप्त होती है, वही रमणीयता का सच्चा स्वरूप है।)

—माघ

रस

एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपो रस अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसः।

(समस्त भूतों का रस पृथ्वी है, पृथ्वी का रस जल है, जल का रस औषधियाँ हैं। औषधियों का रस पुरुष है और पुरुष का रस वाणी है।)

—छांदोग्य उपनिषद्

जिसने छोटे-छोटे रसों को जीतने का प्रयत्न नहीं किया, उसे वे ऐन मौके पर दगा देते हैं।

—महात्मा गांधी

रसाल

करूँ बड़ाई फूल की, या फल की चिरकाल ?
फूला-फला यथार्थ में, तू ही यहाँ रसाल !

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत)

रहस्य-रहस्यवाद

यदि तुम अपने रहस्य शत्रु से गोपनीय रखना चाहते हो तो अपने किसी मित्र से भी उनकी चर्चा न करो।

—फ्रैंकलिन

कोई भी ऐसा रहस्य नहीं है जिसका उद्घाटन नहीं होगा।

—ल्यूक

बिना रहस्य के तो आदमी छूछा हो जाता है। सजीव है इसलिए कि कुछ रहस्य है। कुछ है जो पकड़ में नहीं आता। रहस्य तो जीवन का मर्म ही है। वह बंधे तो कैसे ? प्रयत्न करने से वह और रहस्यात्मक हो जाता है।

—जैनेन्द्र (साहित्य में श्रेय और प्रेय)

तमाम आर्य संस्कृति रहस्यवाद पर प्रतिष्ठित है, रामायण, महाभारत, रहस्यवाद के ग्रन्थ हैं, सब ऋषि, कवि, रहस्यवादी थे, रहस्यवाद ही सर्वोच्च साहित्य है।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता का मनन किया। हृदय की भाव भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की ओर दोनों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा)

प्रेम के भीतर एक ऐसा अद्‌भुत रहस्य है जहाँ एक ओर यदि कुछ भी न जानें वहाँ दूसरी ओर से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सामञ्जस्य)

राग-द्वेष

राग द्वेष ईर्ष्या मद मोहू। जानि सपनेहु इनके बस होहू।

—तुलसीदास (मानस अयोध्या०)

रहित राग अरू द्वेष ते, इन्द्रिय जासु अधीन।
जदपि सो भोगत सब विषय, पै प्रसन्न स्वाधीन॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

रंकन माहिं वस्तु लघु लागी। धधकत राग-द्वेष वनि आगी॥
रहत न स्वल्प-अनल्प विचारा। होत कुटुम्ब ग्राम जरि छारा॥
वनहुँ माहिं मुनिमंडली, निवसति नहिं निष्पाप।
दण्ड कमण्डलु हित लरत, देत परस्पर शाप॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

राग-द्वेष के दावानल से,
जलता है जग का कानन।
उसे तीव्र करता रहता है,
क्षुद्र स्वार्थ का प्रबल पवन॥

—ठाकुर गोपालशरण सिंह (जगदालोक)

आसरा मत ऊपर का देख, सहारा मत नीचे का माँग,
यही क्या कम तुझको वरदान, कि तेरे अन्तस्तल में राग;
राग से बाँधे चल आकाश, राग से बाँधे चल पाताल।
धंसा चल अंधकार को भेद, राग से साधे अपनी चाल!

—बच्चन (अभिनव सोपान)

राग के समान कोई दुःख नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत)

किसी भी वस्तु तथा मनुष्य के प्रति अपनत्व के भाव से मन का आकृष्ट होना ही राग है।

—अज्ञात

जब तक राग-द्वेष वर्तमान है, तब तक कोई भी न तो योगी है, न भक्त है और न ज्ञानी ही है।

—अज्ञात

राग-द्वेष के अभाव से ही कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग की सिद्धि होती है, जब तक राग द्वेष है तब तक विषमता है, तब तक मानव ईश्वर से बहुत दूर है।

—अज्ञात

दुवि हे बंधे-पेज्जबंधे चेवदोस बंधे चेव।
(बंधन दो प्रकार के हैं—प्रेम का बंधन और द्वेष का बंधन।)

—महावीर स्वामी (स्थानांग)

रागो य दोसो वि य कम्मवीयं,
कम्मं च मोहप्प भवं वयंति।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाईमरणं वयंति॥

(राग और द्वेष ये दो कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से पैदा होता है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही वास्तव में दुःख है।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

रागस्स हेउं समणुन्नमाहु,
दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु।

(मनोज्ञ शब्दादि राग के कारण होते हैं और अमनोज्ञ द्वेष के कारण।)

—महावीर स्वामी (उत्तराध्ययन)

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
(जीव रागयुक्त होकर कर्म बाँधता है और विरक्त होकर कर्मों से मुक्त होता है।)

—आचार्य कुंदकुंद (समयसार)

ण य वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधोत्थि।
(कर्मबंध वस्तु से नहीं, राग और द्वेष के अध्यवसाय संकल्प से होता है।)

—आचार्य कुंदकुंद (समयसार)

अयमेव महत्तरो कलि, यो सुगतेसु मनं पदूसये।
(श्रेष्ठ मानवों के प्रति द्वेष रखना सबसे बड़ा पाप है।)

—महात्मा बुद्ध (अंगुत्तर निकाय)

नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोस समो कलि।
(राग से बढ़कर और कोई अग्नि नहीं है, द्वेष से बढ़कर और कोई पाप नहीं है।)

—महात्मा बुद्ध (धम्मपद)

तिण दोसानि खेत्तानि, रागदोसा अयं पजा।
(खेतों का दोष घास फूंस है, मानवों का दोष राग है।)

—महात्मा बुद्ध (धम्मपद)

नतिया असति आगति गति न भवति।
(राग नहीं होने से आवागमन नहीं होता है।)

—महात्मा बुद्ध (उदान)

लोभो दोसो च मोहो च, पुरिसं पाप चेतसं।
हिंसन्ति अत्तसंभूता तचसारं व सम्फलं॥
(अपने ही चित्त में पैदा होने वाले, लोभ, द्वेष और मोह, पाप चित्त वाले मानव को वैसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे कि केले के पेड़ को उसका फल।)

—महात्मा बुद्ध (इतिवृत्तक)

येसं नत्थि पियं, नत्थि तेसं दुक्खं।

(जिनका कहीं भी किसी से भी राग नहीं है, उन्हें कोई भी दुःख नहीं है।)

—महात्मा बुद्ध (उदान)

पुव्वतव संजमा होंति, रागिणी पच्छिमा अरागस्स।

(रागात्मा के तप-संयम निम्नकोटि के होते हैं, वीतराग के तप-संयम उत्कृष्टतम होते हैं।)

—निशीथभाष्य

माया लोभेहिंतो रागो भवति।
कोह माणेहिं तो दोसो भवति॥

(माया और लोभ से राग होता है। क्रोध और मानसे द्वेष होता है।)

—निशीथ चूर्णि

खीरे दूसिं जधापप्प, विणास मुव गच्छति।
एवं रागो व दोसो य, वंभचेरविणासणो॥

(तनिक-सी खटाई भी जिस तरह दूध का नाश कर देती है, उसी तरह राग-द्वेष का संकल्प संयम का नाश कर देता है।)

—इसि भासियाई

रागरत्ता न दक्खंति तमोखंधेन आवुश।

(गहन अंधकार से आच्छन्न रागासक्त मानव सत्य का दर्शन नहीं कर सकते।)

—महात्मा बुद्ध (दीर्घनिकाय)

संसग्गा वनथो जातो, असंसग्गेन छिज्जति।

(संसर्ग से उत्पन्न राग का वन असंसर्ग से काट दिया जाता है।)

—महात्मा बुद्ध (संयुत्तनिकाय)

न चक्खु रूपानं संयोजनं, न रूपा चक्खुम्स संयोजनं।
यं च तत्थ तदुभवं पटिच्च उपज्जति छंदरागो तं तत्थ संयोजनं ।।

(न तो नेत्र रूपों का बंधन है और न रूप ही नेत्र के बंधन हैं ? किन्तु जो वहाँ दोनों के निमित्त से छंदराग पैदा होता है, वास्तव में वही बंधन है।)

—महात्मा बुद्ध (संयुत्तनिकाय)

तयोमे, भिक्खवे अग्गी।
कतमे तयो ?
रागग्गी, दोसग्गी, मोहग्गी।

(भिक्षुओं ! तीन अग्नियाँ हैं। कौन-सी तीन अग्नियाँ ? रागाग्नि, द्वेषाग्नि और मोहाग्नि।)

—महात्माबुद्ध (इतिवृत्तक)

रागो रजो न च पन रेणु वुच्चति,
रागस्सेतं अधिवचनं रजो ति।
दोसो रजो न च पन रेणु वुच्चति,
दोसस्सेनं अधिवचनं रजो ति।

(राग ही रज (धूल) है, रेणु (धूल) रज नहीं है। 'रज' यह राग का ही नाम है। द्वेष ही रज है, रेणु रज नहीं है। 'रज' यह द्वेष का ही नाम है।)

—महात्मा बुद्ध (विसुद्धिमग्ग)

राजदूत

राजदूत एक ईमानदार व्यक्ति है, जो विदेश में अपने देश के लाभार्थ रहकर षड्यंत्र रचता है।

—अज्ञात

सहज विवेक, आकर्षक स्वरूप, मननशील विद्या, ये तीनों जिसमें हों, वही राजदूत बनने योग्य है।

—संत तिरुवल्लुवर

नीति विरोध न मारिय दूता।

—तुलसी (मानस-सुन्दर०)

दयालु हृदय, उच्चकुल और राजाओं को प्रसन्न करने वाले उपाय ये सब राजदूतों के विशेष गुण हैं।

—संत तिरुवल्लुवर

प्रेम-मय प्रकृति, सुतीक्ष्ण बुद्धि और वाक्पटुता—ये तीनों बातें राजदूत के लिए अनिवार्य हैं।

—संत तिरुवल्लुवर

राजधर्म

राजधर्म सब होइ सूर तहँ, प्रजा न जाय सताए।

— सूरदास

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहं एक।
पालै पोषै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥

—तुलसी

राजनीति

राजनीति के समान कोई दूसरा जुआ नहीं है।

—डिजरायली

राजनीति कुछ इंसानों के लाभार्थ बहुत से व्यक्तियों का उन्माद है।

—एलेक्जेण्डर पोप

आधुनिक राजनीति मूलतः मनुष्यों का नहीं अपितु शक्तियों का संघर्ष है।

—हेनरी ऐडम

वन्दीगृह की अपेक्षा राजनीति में उससे अधिक स्वतंत्रता नहीं है।

—विल रोजर्स

समस्त राजनीतिक दल अंत में अपने ही झूठों से नष्ट हो जाते हैं।

—जान अरबुथनर

व्यावहारिक राजनीति यथार्थ को स्वीकार न करने में है।

—हेनरी ऐडम

मानव प्रकृति का ज्ञान ही राजनीतिक शिक्षा का आदि और अंत है।

—हेनरी ऐडम

राजनीति विपत्तियों को खोजने, उसे सर्वत्र प्राप्त करने, गलत निदान करने और अनुपयुक्त चिकित्सा करने की कला है।

— सर अर्नेस्ट वेम

राजनीति वेश्या के समान अनेक प्रकार से व्यवहार में लायी जाती है। कहीं झूठी, कहीं सच, कहीं कठोर और प्रिय भाषिणी होती है, कहीं हिंसक और दयालु होती है, कहीं कृपण और कहीं उदार होती है, कहीं अधिक द्रव्य व्यय करने वाली और कहीं बहुत संचय करने वाली होती है।

—भर्तृहरि

राजनीति साधुओं के लिए नहीं है।

—लोकमान्य तिलक

मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म से विलग राजनीति मृतक शरीर के तुल्य है जो केवल जला देने योग्य है।

—महात्मा गांधी

राजनीति नीति का राज नहीं चाहती। वह तो राज ही चाहती है। राज करने और राज रखने की ही नीति को वह चाहती है पर क्या वह नीति हैं जो आँख राज पर रखें और जिन पर वह राज हो उन पर पाँव रखने की सोचें।

—जैनेन्द्र

राजनीति में कुंज की पुष्य-शैया जल उठती है। लाल फूल अंगारों का रूप धारण कर लेते हैं और शीतल समीर सर्पों की फुफकार बन जाती है।

—डॉ० रामकुमार वर्मा

राजनीति के लिए मानव नीति को छोड़ना कभी-कभी क्षम्य होने वाला नहीं है।

—जैनेन्द्र

सचिव दोष सों होत हैं, नृपहु बुरे ततकाल।
हाथीवान प्रमाद सों, गज कहवावत ब्याल।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली)

करि कै पथ्य विरोध इक, रोगी त्यागत प्रान।
पै विरोध नृप सों किए, नसत सकुल नर ज्ञान।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली)

पशु को नर, नर को सुर कर दे।
सुर को करदे जग हितकारी।
जगहित कर सर्वांग समुन्नति।
का सब को कर दे अधिकारी।
शासन वह जो स्वर्गिक सा हो।
माना शासित ही न मही है।
राजनीति का तत्त्व यही है।।

—बलदेवप्रसाद मिश्र (साकेत संत)

राजनीतियों के पदों में अंतिम नाश गंसा है।
तृष्णा का विकास भरमा कर नर को कब न हँसा है?

—उदयशंकर भट्ट (तक्षशिला)

राजनीतिज्ञ

खाली पेट अच्छा राजनीतिज्ञ परामर्शदाता नहीं है।

—अज्ञात

राजनीति-जीवियों की, उनकी नाना छल-चतुराइयों के लिए, हम तारीफ कर सकते हैं, किन्तु उनके प्रति भक्ति नहीं कर सकते।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

राजनीतिज्ञ पारे की तरह है। यदि तुम उसपर उंगली रखने का प्रयास करो उसके नीचे कुछ नहीं मिलता।

—आस्टिन

राजनीतिज्ञ आगामी चुनाव के विषय में और कुशल राजनेता अगली पीढ़ी के विषय में सोचता है।

—जे० एफ० क्लार्क

राजनीतिक उन्नति

जिस देश को राजनीतिक उन्नति करनी हो वह यदि पहले सामाजिक उन्नति नहीं कर लेगा, तो राजनीतिक उन्नति आकाश में महल बनाने जैसी होगी।

—महात्मा गांधी

राजमद

सब ते कठिन राजमद भाई।
सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥

—तुलसी

राज्य, राज्य-व्यवस्था

राज्य-व्यवस्था का आधार न्याय नहीं, भय है। भय को आप निकाल दीजिए और सब राज्य विध्वंस हो जाएगा, फिर अर्जुन की वीरता और युधिष्ठिर का न्याय भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता और दो सौ निरपराधियों का जेल में रहना राज्य न रहने से कहीं अच्छा है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

राज्य ने श्रद्धा को तोड़ा है और उसके अभाव से लोगों में अनाथ भाव आया कि उन्हें अपने अधीन ले लिया है।

—जैनेन्द्र

राज्य का बल हृदय का नहीं, कानून का है। गुण का नहीं संख्या का है, सहानुभूति का नहीं दमन का है, उस नियम को देखते हुए राज पुरुष की संस्कृति को नेतृत्व देने की असमर्थता अवश्य ही मान लेनी चाहिए।

—जैनेन्द्र

राज्य शक्ति नहीं, शक्ति के उदय में बाधा है।

—जैनेन्द्र

राज्य पशु बल का ही प्रत्यक्ष रूप है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

राज्य उन्हें केवल दूसरों के कठोर हाथों से बचाता है।

—प्रेमचन्द (बैंक का दिवाला)

राज्य-पद हमें स्वाधीन नहीं बनाते बल्कि हमारी आध्यात्मिक पराधीनता को और भी पुष्ट कर देते हैं।

—प्रेमचन्द (आदर्श विरोध)

राजा

राजा लोग जिसे निकालते हैं, कोई न कोई दाग भी जरूर लगा देते हैं।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

राजा की निगाह चारों ओर दौड़नी चाहिए । अगर उसमें इतनी योग्यता नहीं तो उसे राज्य करने का कोई अधिकार नहीं ।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

दीन प्रजा के रूप से राज्य-तिलक लगाना किसी राजा के लिए मंगलकारी नहीं हो सकता । प्रजा का आशीर्वाद ही राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है ।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

संसार में जिस दिन राजाओं की ज़रूरत न रहेगी, उस दिन उनका अन्त हो जायेगा । देश में उसी की राज्य व्यवस्था होती है, जिसका अधिकार होता है ।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

राजा लोगों को जहाँ किसी बात की धुन सवार हो गई, फिर उसे पूरा किए बिना न मानेंगे, चाहे उनका राज्य ही क्यों न मिट जाए ।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

राजाओं की यह पुरानी नीति है कि प्रजा का मन मीठी-मीठी बातों से भरें और अपने कर्मचारियों को मनमाने अत्याचार करने दें । वह राजा, जिसके कानों तक प्रजा की पुकार न पहुँचने पाए, आदर्शवादी नहीं कहा जा सकता है ।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

राजा सत्य है, राजा धर्म है, राजा कुलीन पुरुषों का कुल है, राजा ही माता और पिता है, तथा राजा मानवों का हित-साधन करने वाला है ।

—वाल्मीकि

यथा अमल पावन पवन, पाय कुसंग सुसंग ।
कहिय सुवास कुबास तिमि, काल महीस प्रसंग ॥

—तुलसीदास (तुलसी सतसई)

जो राजा प्रजा की भली भाँति रक्षा नहीं करता वह चोर के समान है ।

—महाभारत

है न प्रजा के जिसकी भाषा भेस स्वभाव समान।
वह उनके हित पर कब देगा किस मतलब से ध्यान ?

—रामनरेश त्रिपाठी (मिलन)

सोइ नृपति जो तेजयुत, देत तदपि नहीं ताप।
लरत भूपति नित्य उठि, ते वसुधा अभिशाप॥

—द्वारकाप्रसाद मिश्र (कृष्णायन)

सूम सर्वभक्षी दैववादी जो कुवादी जड़,
अपयशी ऐसी भूमि भूपति न सोहिये॥

—केशवदास (रामचन्द्रिका)

प्रात धर्म चितवै, सहज हित मित्र विचारै।
चर चलाय चहुँ ओर, देसपुर प्रजा सभारैं॥
रागद्वेष हिय गोप वचन अमृत सम वोलैं।
समय ठोर पहिचान कठिन कोमल गुन खोलैं॥
निज जतन करैं संचै रतन न्याय मित्रअरि समगनै।
रन मैं निसंक हुय संचरै सोनरेन्द रिपुदल हनै॥

—बनारसीदास (नवरत्न कवित्त)

यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते।
तथा नरेन्दो राष्ट्रस्य प्रभवःसत्यधर्मयोः॥

(जैसे दृष्टि सदा ही देह के हित में लगी रहती है, उसी तरह राजा राष्ट्र को सत्य और धर्म में लगाने वाला होता है।)

—वाल्मीकि रामायण

नाराजके जनपदे स्वयं भवति कस्यचित्।
नत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्॥

(बिना राजा के देश में किसी की कोई वस्तु अपनी नहीं रहती। मीन की तरह सब लोग सदैव परस्पर एक दूसरे को अपना ग्रास बनाते लूटते-खसोटते रहते हैं।)

—वाल्मीकि रामायण

बुद्धि शास्त्र प्रकृत्यंङ्ग गे घनसंवृत्तिकञ्चुकः ।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोपि पार्थिवः ।।

(बुद्धि ही जिसका शस्त्र है, सेना अमात्य, आदि राज्याङ्ग ही जिसके अंग हैं, दुर्भेद्य मंत्र की सुरक्षा ही जिसका कवच है, गुप्तचर ही जिनके नेत्र हैं, संदेशवाहक दूत ही जिसका मुख है, इस तरह का राजा कोई अलौकिक ही पुरुष है ।

—माघ (शिशुपाल वध)

राजाश्रय

महत्त्वाकांक्षी विद्वान्, शिल्पकार्य में निपुण कारीगर, शूरवीर एवं सेवावृत्ति में चतुर लोगों के लिए राजा के बिना कहीं दूसरी जगह आश्रय नहीं मिलता ।

—पंचतंत्र

अपने मित्रों और शुभचिन्तकों का उपकार करने के लिए तथा शत्रुओं का अपकार करने के लिए बुद्धिमान् लोग राजाओं का आश्रय ग्रहण करते हैं, केवल अपने पेट को कौन नहीं भर लेता ।

—पंचतंत्र

रामनाम

रांमनाम कहि जे जमुहाहीं । तिनहिं न पाप-पुंज समुहाहीं ।।
उलटा नाम जपत जगु जाना । वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना ।।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

स्वपच सवर खसजमन जड़ पाँवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ।।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

लोक हुँ वेद विदित कवि कहहीं । राम विमुख थलु नरक न लहहीं ।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

वेद पुरान विहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपाल न, राज समाज बड़ो ई छली है॥
वर्न विभाग न आश्रम धर्म, दुनी दुख दोष दरिद्र दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥

—तुलसीदास (कवितावली)

वोवत वबुर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे।
'सूरदास' तुम राम न भजिकै, फिरत काल संग लागे॥

—सूरदास (सूरसागर)

राम नाम मृत्यु के दुःख को मिटा देता है। यह रामनाम का क्या कोई छोटा-मोटा चमत्कार है!

—महात्मा गांधी

संतों ने साहित्य का सारा सार रामनाम में ला रखा है।

—विनोबा भावे

रामराज्य

धार्मिक दृष्टिकोण से रामराज्य पृथ्वी पर ईश्वरीय कहा जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से रामराज्य एक ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र है, जहाँ अधिकार, वर्ण, स्त्री तथा पुरुष के विभेद पर आश्रित असमानताएँ तिरोहित हो जाती हैं। इस प्रजातंत्र में भूमि तथा राजसत्ता की अधिकारिणी प्रजा है।

—महात्मा गांधी

दैविक दैहिक भौतिक तापा। रामराज्य काहुंहि नहि व्यापा॥

—तुलसीदास

रामायण

रामायण हमारा क्षीर सागर है।

—विनायक दामोदर सावरकर

मैं तुलसीदास जी की रामायण को भक्ति-मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ समझता हूँ। रामचरित मानस विचार-रत्नों का भण्डार है।

—महात्मा गांधी

रामायण में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की निर्मल त्रिवेणी का प्रवाह बहता है।

—महामना पं० मदनमोहन मालवीय

रामचरित मानस विमल, संतन जीवन प्रान।
हिन्दुआन को वेद सम, जवनहिं प्रगट कुरान ॥

—रहीम

रामायण सुर तरू की छाया।
दुःख भय दूर निकट जो आया ॥

—तुलसीदास

रामायण के द्वारा भारतवर्ष से स्वार्थपरता का दोष जितना दूर हुआ है उतना किसी भी नीतिवान्, धर्मविद, समाज-सुधारक राज पुरुष और राजा के द्वारा नहीं हो सका।

—बंकिमचन्द्र

यह ग्रन्थ समस्त मनुष्य जाति को अनिर्वचनीय सुख और शान्ति पहुँचाने का साधन है।

—महामना पं० मदनमोहन मालवीय

रामायण की सरसता क्या संसार के किसी काव्य से उपलब्ध हो सकती है? अप्सराओं के अधरों और द्राक्षलताओं ने रामायण का रस न जाने कितनी बार चुरा-चुराकर चखा है।

—विनायक दामोदर सावरकर

मैं तुलसीदास जी की रामायण को भक्ति-मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ समझता हूँ। रामचरित मानस विचार-रत्नों का भण्डार है।

—महात्मा गांधी

रामायण में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की निर्मल त्रिवेणी का प्रवाह वहता है।

—महामना पं० मदनमोहन मालवीय

रामचरित मानस विमल, संतन जीवन प्रान।
हिन्दुआन को वेद सम, जवनहिं प्रगट कुरान॥

—रहीम

रामायण सुर तरू की छाया।
दुःख भय दूर निकट जो आया॥

—तुलसीदास

रामायण के द्वारा भारतवर्ष से स्वार्थपरता का दोष जितना दूर हुआ है उतना किसी भी नीतिवान्, धर्मविद, समाज-सुधारक राज पुरुष और राजा के द्वारा नहीं हो सका।

—बंकिमचन्द्र

यह ग्रन्थ समस्त मनुष्य जाति को अनिर्वचनीय सुख और शान्ति पहुँचाने का साधन है।

—महामना पं० मदनमोहन मालवीय

रामायण की सरसता क्या संसार के किसी काव्य से उपलब्ध हो सकती है? अप्सराओं के अधरों और द्राक्षलताओं ने रामायण का रस न जाने कितनी वार चुरा-चुराकर चखा है।

—विनायक दामोदर सावरकर

राज्यों की शक्ति का उतार-चढ़ाव दया और न्याय के अनुपात के आधार पर अवलम्बित है। जनसंख्या की वृद्धि से या अन्य राष्ट्रों को हड़प कर कोई राष्ट्र शक्तिशाली नहीं हो सकता।

—रस्किन

तन्त्र

राष्ट्रतंत्र के अनेक पाप और दोषों में से एक सबसे वड़ा पाप या दोष है उसमें स्वार्थ ढूँढ़ना, मतलब गाँठने की फिराक में रहना। राष्ट्रीय-स्वार्थ बहुत बड़ा स्वार्थ है, फिर भी स्वार्थ की जो गंदगी है, वह उसमें आये बगैर रह ही नहीं सकती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (महात्मा गांधी)

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का नहीं भेद व्यवधान यहाँ।
सबका स्वागत सबका आदर सबका सम सम्मान यहाँ॥
राम रहीम बुद्ध ईसा का सुलभ एक-सा ध्यान यहाँ।
भिन्न भिन्न भव संस्कृतियों के गुण गौरव का ज्ञान यहाँ॥
नहीं चाहिए बुद्धि बैर को, भला-प्रेम उन्माद यहाँ।
सब का शिव कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ॥

—मैथिलीशरण गुप्त (मंगलघट)

जिन्होंने राष्ट्रों का निर्माण किया है उनकी कीर्ति अमर हो गई है।

—प्रेमचन्द

बहु प्रान्तों की वाणी का जन मानस हो रस-संगम;
सांस्कृतिक दैत्य की खाई फिर पटे युगों की दुर्गम।
उत्तर दक्षिण छोरों पर नव सेतुबंध हो निर्मित,
इस जन विशाल भू में हो राष्ट्रीय एकता प्रतिष्ठित॥

—सुमित्रानंदन पंत (लोकायतन)

राष्ट्र सेवा महँगा सौदा है।

—अज्ञात

अपनी राष्ट्रीय मनोवृत्ति को शुद्ध रखिए, आपकी राष्ट्रीय आँखें स्वयं ठीक हो जाएँगी।

—रस्किन

रात्रि

रात्रि को, निद्रा के समय, हम प्राण के जाल का प्रसार, चेतना के जाल का प्रसार बिल्कुल बन्द करके रखते हैं। वह संशोधन तथा क्षति पूर्ति का समय है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रात्रि)

रिपु

रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुं देत दुख रविस सिहिं, सिर अवसेषित राहु॥

—तुलसी (मानस-बाल०)

रिपु पर दया परम कदराई।

—तुलसी (मानस-अरण्य०)

अपने रिपु के लिए भट्टी को इतना अधिक गर्म न कर कि वह तुझे ही भून डाले।

—शेक्सपियर

रिश्तेदार

कोई भी ऐसा व्यक्ति दूसरों से सम्मान न पायेगा जिससे स्वयं उसके रिश्तेदार ही घृणा करते हों।

—प्लाउटस

रिश्वत

रिश्वत और कर्त्तव्य दोनों साथ नहीं निभ सकते ?

—प्रेमचन्द (गोदान)

रिश्वत की कमाई से बरकत नहीं होती ।

—प्रेमचन्द (माता का हृदय)

रिश्वत का पैसा देह फुला देता है, बिना हराम की कौड़ी खाये देह फूल ही नहीं सकती ।

—प्रेमचन्द (प्रेमाश्रम)

रिश्वत अब भी नब्बे फीसदी अभियोगों पर पर्दा डालती है। फिर भी पाप का भय प्रत्येक हृदय में है।

—प्रेमचन्द

जो किसी से रिश्वत लेता नहीं, वह किसी को देगा कहाँ से ?

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

रिश्वत लोक-परलोक दोनों का ही सर्वनाश कर देती है। उसमें भय है, चोरी है, बदमाशी है।

—प्रेमचन्द (सज्जनता का दंड)

न्यायधीश और सेनेट के सदस्य भी रिश्वत के द्वारा मोल लिए गए हैं।

—पोप

सच्चे आदमी का मत खरीदने के लिए समस्त विश्व की सम्पदा भी पर्याप्त नहीं है।

—सेंट ग्रेगोरी

रीति-रिवाज

रीति रिवाज बुद्धिहीनों के कानून हैं।

—वैनबुग

रुचि

आरों की क्या कहिये,
निज रुचि ही एकता नहीं रखती,
चन्दामृत पीकर तू,
चकोरि, अंगार हैं, चखती।

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत)

जो जेहि रस नित है मकरंदी, ता चरचा सुनि होइ अनन्दो।
तपी तपस्या सन सुख पावै, मदिरा बात मद्रूपहि भावै॥
विद्या रागी विचार सुनै, फूल सनेही फूलै चूनै।
जो जाको मन भावन होइ, ता गुन सन मुद मानै सोइ॥

—नूर मुहम्मद (अनुराग बाँसुरी)

हमारी रुचि हमारे जीवन की परख है, हमारे मनुष्यतत्व की पहचान है।

—रस्किन

रुदन

रुदन करना वीरों को उचित नहीं, रोना-धोना स्त्रियों का काम है।

—जयशंकर प्रसाद

क्रोध के लिए नहीं अपितु प्रेम के लिए रोओ, सर्द बारिश फूल नहीं खिलाती।

—डन्कन

रुढ़ियाँ

रूढ़ियाँ कभी धर्म नहीं होतीं। वे एक समय की वनी हुई सामाजिक श्रृंखलायें हैं, वे पहले की श्रृंखलायें जिन से समाज में सुथरापन था, मर्यादा थी पर अब जो जंजीरें वन गयी हैं।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

रुपया

जिस प्रकार जोंक चिपटने पर खून चूसे बिना नहीं छोड़ती, उसी प्रकार बनिये का रुपया भी मांस और सम्मान लिए नहीं छोड़ता।

—शरण (दीया, लौ और बाती)

रोइ रोंइ के पाइये, रुपिया जिसका नाम।
जन जाये फिर रोइये, इह सुख जिसको काम॥

—गिरिधर कविराय (कुंडलियां)

रूप

रूप है वह पहला उपहार
प्रकृति जो रमणी को देती।
और है यही वस्तु वह जिसे
छीन सब से पहले लेती।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (नये सुभाषित)

कहा रूप कहि कोकि लही। गुन करि सब सुष दाइ॥
अति उज्जवल बक गुन बिना। काहूं कूं न सुहाइ॥

—लाल (रूप गुण संवाद)

कहा रूप कुबजा कहउ। गुनन कृष्न वर कीन।
गुन ग्राहक प्रिय देष कैं। रूप रह्यौ दिन दीन॥

—लाल (रूप गुण संवाद)

दरपन मैं मुष देषियै, जो नीकी छवि होइ।
कहि धौं आछै बदन सौं, काजु करै लघु कोइ॥
वो लच्छिन नींके करहु, मुष कुरूप जो होइ।
एक ठौर कित कीजियै, कहो बुराई दोइ॥

—जानकवि (सिष्यासागर)

सावन नव बरसत जलद, कोर तदपि ललाम।
कातिक घन की उनरई, कहु आवै केहि काम ?

—किशोरीदास वाजपेयी (तरंगिणी)

रूप प्रेम पर का अभिमानू ? दोऊ तजि घट जाहिं निदानू ॥
सदा न रूप रहत है, अंत नसाइ।
प्रेम रूप के नासहिं, तें घट जाइ ॥

—नूरमुहम्मद (अनुराग बाँसुरी)

कच्ची धूप-सदृश प्रिय कोई धूप नहीं हैं,
युवती माता से बढ़ कोई रूप नहीं है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (नये सुभाषित)

रूप के सामने ईमान काफूर हो जाता है।

—अज्ञात

रूप कोई अच्छी वस्तु नहीं। वह मन को दवा देता है, हृदय को ढक देता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (वृष्टिदान)

रूप में सत्य का आविर्भाव होते ही सत्य रूप से ही मुक्ति दे देता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सृष्टि)

रूप तो फूल की ही तरह है, पर उसमें प्रेम की सुगंध नहीं है।

—डॉ० रामकुमार वर्मा

पुरुषों के लिए अमर रूपा-तृष्णा निन्दा जनक है तो स्त्रियों के लिए विनाशकारक है।

—प्रेमचन्द (प्रेम-पचीसी)

रंग कैसा ही सुन्दर हो, रूप की कमी नहीं पूरी कर सकता।

—प्रेमचन्द

रूप ही दर्शन की सार्थकता है।

—निराला (निरुपमा)

रूप जब सो जाता है तो और भी नशीला हो जाता है, और जुल्फें जब बिखर जाती हैं तो और भी जहरीली हो जाती हैं।

—सुदर्शन

असली रूप तो अपने गुणों से ही झलकता है। अपनी छाप गुणवान् होकर डालनी चाहिए, रूपवान होकर नहीं।

—महात्मा गांधी

रूप के साथ आँखों का घनिष्ट सम्बन्ध है। पतंगा एक दूसरे पतंगे को जल कर भस्म होते देखता है पर रह नहीं सकता। इतना बड़ा प्रत्यक्ष ज्ञान भी रूप के मोह से उसे बचा नहीं सकता।

—निराला (निरुपमा)

रूप और गर्व में चोली-दामन का नाता है।

—प्रेमचन्द

रूप की चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं।

—प्रेमचन्द (गोदान)

रूप अंग में नहीं होता अन्तरंग में होता है।

—जैनेन्द्र (काम, रूप, परिवार)

रूप देखने वालों की आँखों में है।

—जैनेन्द्र (साहित्य का श्रेय और प्रेय)

रोग-रोगी

डाक्टर के निराश हो जाने पर रोगी सदैव मर ही जाता है, ऐसी बात नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा)

...रोगों की औषधि लाल पानी ही होती है, जिसका एक घूंट हलक से लेकर दिल तक कड़ुवा बना देता है। उसकी कड़वाहट की बू डकार के साथ ही बाहर निकलती है।

—शरण (पंछी, पिंजरा और उड़ान)

रोग का अंत करने के लिए रोगी का अंत कर देना न बुद्धिसंगत है, न न्यायसंगत ! आग आग से शांत नहीं होती, पानी से शांत होती है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

रोग रुचि रखते हुए भी स्वादिष्ट वस्तुओं से बचता है कि कहीं उनसे रोग और न बढ़ आये।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

जब रोग असाध्य हो जाता है, दवा भी उस पर विष का काम करती है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

रोगी को जब जीने की आशा नहीं रहती, तो औषधि छोड़ देता है।

—प्रेमचन्द (ममता)

बड़े आदमियों के रोग भी बड़े होते हैं। वह बड़ा आदमी ही क्या जिसे कोई छोटा रोग हो।

—प्रेमचन्द

रोगी जब तक बीमार रहता है उसे सुध नहीं रहती कि कौन मेरी औषधि करता है, कौन मुझे देखने के लिए आता है। वह अपने ही कष्ट में इतना ग्रस्त रहता है कि किसी दूसरे की बात का ध्यान ही उसके हृदय में उत्पन्न नहीं होता, पर जब वह आरोग्य हो जाता है, तब उसे अपनी सुश्रूषा करने वालों का ध्यान और उनके उद्योग तथा परिश्रम का अनुमान लगता है और उसके हृदय में उसका प्रेम और आदर बढ़ जाता है।

—प्रेमचन्द (वरदान)

रोग का निवारण मौत से नहीं दवा से होता है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

रोग मानने से बढ़ता है। रोग की सबसे अच्छी औषधि निराहार है।

—जैनेन्द्र (जै० क० भाग--२)

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कप लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउभाई। उपजइ सन्निपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इर्षाई। हरष विषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोइछई। कुष्ट दुष्टता मन कुटलाई ॥
अहंकार अति दुखद डमरूआ। दंभ कपट मद मान नेहरूआ ॥
तृष्णा उदरवृद्धि अति भारी। त्रिविध ईष्णा तरुन तिजारी ॥
युग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

—तुलसी (मानस, उत्तर०)

स्वस्थ आदमी अगर नीम की पत्ती चबाता है, तो अपने स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए। वह शौक से पीसता और शौक से पीता है, पर रोगी वह पत्तियाँ पीता है तो नाक सिकोड़कर, मुँह बनाकर, झुंझलाकर और अपनी तकदीर को रोकर।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

बीमारी के बाद हम बच्चों की तरह जिद्दी, उतने ही आतुर, उतने ही सरल हो जाते हैं। जिन किताबों में कभी मन न लगा हो, वह बीमारी के बाद पढ़ी जाती हैं।

—प्रेमचन्द (शिकार)

को दीर्घरोगो भव एव साधो।
(बड़ा भारी रोग क्या है ? हे साधो, बार-बार जन्म लेना है।)

—स्वामी शंकराचार्य

फ़ौजों और हथियारों की शक्ति पर विश्वास करना एक बहुत बड़ा रोग है। इस रोग ने संसार को बहुत कष्ट पहुंचाया है और रोगों को भयभीत कर दिया है।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

बीमार के पास बैठने से आदमी सचमुच बीमार पड़ जाता है।

—प्रेमचन्द (शिकार)

रोटी

इंसान से बढ़कर मूल्य है रोटी का। यही रोटी किसी की ज़िन्दगी से खेल जाती है और किसी के सतीत्व से। आज यह पेट न होता तो मानव की दृष्टि में रोटी का इतना महत्त्व नहीं होता।

—शरण (पंछी, पिंजरा और उड़ान)

बटमारी चोरी, ठगी दुख, दारिद-संताप।
रोटी को निहचै भये, गए लखहिं सब आप॥

—रामेश्वर करुण (करुण सतसई)

सब प्रश्नों का परदादा
यह रोटी प्रश्न अकेला,
नित सब को नाच नचाता
हों आप गुरु या चेला।

—रामेश्वर करुण (चिंगारी)

कलाकार ! कहते हो रोटी में सौन्दर्य नहीं कुछ मिलता।
मेरा जीवन पुष्प सदा, कवि, रूखी ही रोटी से खिलता॥

—श्रीमन्नारायण (रजनी में प्रभात का अंकुर)

सच है, अगर लोग भूखे हैं, भूख मिटानी ही होगी,
चाहे मिले जहाँ लेकिन, रोटी तो लानी ही होगी।
सच तो है, रोटियाँ नहीं तो क्या ये कविता खायेंगे ?
थाली में धर कर विराट कवियों के गीत चबायेंगे ?

—रामधारीसिंह 'दिनकर (चक्रवाल)

रोना

रोना और हँसना ये ही तो मानवी सभ्यता के आधार हैं, इसी के लिए सभ्यता की कल्पना है—इसी के साधन मनुष्य की उन्नति के लक्षण कहे जाते हैं।

—जयशंकर प्रसाद

जब रोना हो तो एकान्त की खोज करो और जब हँसना हो तो मित्रों में आओ।

—अज्ञात

लक्ष्मी

लक्ष्मी उन्हीं की सहायता करती है, जिनका निर्णय विवेकशील होता है।

—यूरीपोडीज

लक्ष्मी जाति कुल थोड़े ही देखती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कुमुदिनी)

न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, वह जैसे चाहती है नचाती है।

—प्रेमचन्द

वेदान्त धर्म का सच्चा अधिकारी और पात्र वही हो सकता है जो सामर्थ्यवान् हो, सम्पन्न हो, लक्ष्मी जिस के चरण चूमती हो।

—विवेकानंद

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, कस न चंचला होय।

—रहीम

धनवान् लोगों के मन में हमेशा शंका रहती है, इसलिए यदि हम लक्ष्मी देवी को खुश करना चाहते हैं तो हमें अपनी पात्रता सिद्ध करनी पड़ेगी।

—महात्मा गांधी

हे देवराज ! जब किसी राष्ट्र में प्रजा सदाचार खो देती है, तो वहाँ की भूमि, जल, अग्नि कोई भी मुझे स्थिर नहीं रख सकते। मैं लोकश्री हूँ, मुझे लोक सिंहासन चाहिए। सदाचारी व्यक्ति के मानस में ही मैं अचल निवास करती हूँ।

—राजगोपालाचारी

आपु आवती लक्ष्मी, को मूरख नहिं लेत।
सोऊ बिना माँगे मिलै, तो केवल हरि देत॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली)

कूर सदा भाखत पियहि, चंचल सहज सुभाव।
नर गुन औगुन नहि लखत, सज्जन खल समभाव॥
डरत सूर सों भीरु कहँ, गिनत न कछु रति-हीन।
वार नारि अरु लक्ष्मी, कहौ कौन बस कीन॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली)

श्रीपति ने गो सेवा की है, वही वुद्धि लक्ष्मी की भी है।
नर-पशु की सेवा करती है, विज्ञों से सुदूर रहती है॥
धनी गेह में भी जाती है, कभी न जाती निर्धन घर में।
वारिधि में गंगा गिरती है, कभी न गिरती भूखे सर में॥
उद्यम हीन आलसी जे नर, रमा न रहती है उनके घर।
जैसे तरुणी बूढ़े वर से, प्रेम नहीं करती है उर से॥

—रामचरित उपाध्याय (लक्ष्मीलीला)

लक्ष्मी उसी के लिए वरदान है जो उसे दूसरों के लिए वरदान बना देता है।

—फील्डिंग

लक्ष्मी के पास में रहने से उतना आनन्द नहीं होता जितना उसके खो जाने से, छिन जाने से दुःख होता है।

—सेंट ग्रेगरी

लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।

(जो लक्ष्मी को पाना चाहता हो उसे लक्ष्मी भले ही न मिले, पर जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे वह उसे न मिले, यह कैसे हो सकता है।)

—कालिदास (कुमारसम्भव)

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात संप्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतिष्ठिति॥

(लक्ष्मी शुभ कार्य से उत्पन्न होती है, चतुरता से बढ़ती है और अत्यंत निपुणता से जड़ बांधती है तथा संयम से स्थिर रहती है।)

—महाभारत

नैतिक स्वरूपों के घेरे में लक्ष्मी का वास है। उसे कोई लोहे की शृंखलाओं में जकड़ नहीं सकता।

—अज्ञात

धृतिः क्षमा दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चांडभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः॥

(धीरज रखना, क्रोध न करना, इंद्रियों को वश में करना, पवित्रता, दया, सरलता से भरे वचन और मित्रों से द्वेष न करना ये सात लक्ष्मी के साधन हैं।)

—महाभारत

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं वह्वाशिन निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं, विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

(मैले वस्त्र वाले, गंदे दांत वाले, पेटु, कठोर भाषी और सूर्योदय और सूर्यास्त के समय में सोने वाले को लक्ष्मी त्याग देती है चाहे वह विष्णु ही क्यों न हो?)

—चाणक्य

निर्धनों की पेट पूजा करना ही लक्ष्मी की श्रेष्ठ पूजा है।

—अज्ञात

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसंचितम् ।
दांपत्ये कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ।।

(जहाँ मूर्ख नहीं पूजे जाते, जहाँ अन्न संचित रहता है और जहाँ स्त्री-पुरुष में कलह नहीं होती वहाँ लक्ष्मी आप ही आकर विराजमान रहती है।)

—चाणक्य

उत्साहसंपन्न दीर्घं सूत्रं क्रिया विधिज्ञं व्यसनैष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवास हेतोः ।।

(जो उत्साही है, आलसी नहीं है, कार्यविधि को जानता है, किसी भी प्रकार से व्यसन मे आसक्त नहीं है, शूरवीर है, कृतज्ञ है और जिसकी मित्रता दृढ़ होती है, ऐसे सज्जन के पास रहने के लिए लक्ष्मी स्वयं ही उपस्थित हो जाती है।)

—पंचतंत्र

लक्ष्य

आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (विश्वास)

अन्तिम लक्ष्य बना देता है, पतित साधनों को भी पावन,
यह सिद्धांत निपट मिथ्या है, न लें सहारा इसका जग जन;
जो साधन नर के शोणित से, लथ-पथ वे कब हैं श्रेयस्कर ?
आओ जग-जन, आज त्याग दें, यह सिद्धांत कुरूप घृणामर।

— बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (हम विषपायी जनम के)

सौदा सौदा है तभी, अगर सेवा है,
सेवा सेवा है तभी, अगर अर्पण है।
अर्पण अर्पण है तभी, अगर पीड़ा है,
पीड़ा पीड़ा है तभी, अगर सोऽहं है,
सोऽहं जब त्वं हो जाय तभी सोऽहं है,
सोऽहं का त्वं में लय ही लक्ष्य परम है।

—प्रयाग नारायण त्रिपाठी (तीसरा सप्तक)

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

(ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है, परब्रह्म ईश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। प्रमादरहित मानव द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। उसे वेध कर बाण की भाँति तन्मय हो जाना चाहिए।)

—महर्षि अंगिरा

आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्।
(उन्नत होना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।)

—अथर्ववेद

अपने जीवन का एक लक्ष्य बनाओ और इसके बाद अपना सारा शारीरिक और मानसिक बल जो भगवान् ने तुम्हें दिया है, उसमें लगा दो।

—कार्लाइल

लक्ष्यहीन जीवन जंगल में भटकने के समान है।

—अज्ञात

जो अपने लक्ष्य के प्रति पागल हो गया है, उसे ही प्रकाश का दर्शन होता है। जो थोड़ा इधर, थोड़ा उधर हाथ मारते हैं, वे कोई लक्ष्य पूर्ण नहीं कर पाते। वे कुछ क्षणों के लिए बड़ा जोश दिखाते हैं; किन्तु वह शीघ्र ठंडा हो जाता है।

—विवेकानंद (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

लक्ष्य की सिद्धि, अन्याय तथा अनीति से नहीं, सत्य और धर्म से ही हो सकती है।

—अज्ञात

लक्ष्य को ही अपना जीवन कार्य समझो। हर क्षण उसी का चिन्तन करो, उसीका स्वप्न देखो। उसीके सहारे जीवित रहो।

—विवेकानंद (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

यह कर्म शक्ति, यह इच्छा शक्ति प्राप्त करो, कठोर परिश्रम करो और तुम निश्चित ही लक्ष्य पर पहुंच जाओगे।

—विवेकानंद (उत्तिष्ठत, जाग्रत)

लगन

मानव-जीवन में लगन बड़े महत्त्व की वस्तु है। जिसमें लगन है, वह बूढ़ा भी जवान है, जिसमें लगन नहीं, वह जवान भी मृतक है।

—प्रेमचन्द (सुजान भगत)

परिश्रम और लगन का पुरस्कार कौन दे सकता है?

—प्रेमचन्द (डिमांसट्रेशन)

जब हम किसी ख्याल में होते हैं, तो न सामने की चीज़ दिखाई देती है, न करीब की बातें सुनाई देती हैं।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

मन के लिए लगन हो एक, मगन रहे वह रक्खे टेक।
इतने से ही तुम कृतकृत्य, करती रहे नियति निज नृत्य।
मन को एक केन्द्र मिल जाय, तो इन्द्रासन भी हिल जाय।
इतना करो किसी भी तौर, स्वय करा लेगा मन और।
भाई, इसे न जाओ भूल, मन ही बंध-मोक्ष का मूल॥

—मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दू)

लगन को काँटों की परवाह नहीं होती।

—प्रेमचन्द

बुद्धि द्वारा मृदु किया गया उत्साह ही लगन है।

—पास्कल

जिसको लगन है वह साधन भी पा जाता है, यदि नहीं पाता तो वह उन्हें पैदा करता है।

—चैनिंग

लगन (लग्न-मुहूर्त)

मन ते इतने भरम गंवावौ।
चलत विदेस विप्र जनि पूछो, दिन का दोष न लावौ।

—मलूकदास (संत सुधासार)

लगन मुहरत झूठ सब, और बिगाड़ै काम।
और बिगाड़े काम, साइत जनि सोधै कोई॥
एक भरोसा नाहिं, कुसल कहवाँ से होई।
'पलटू' सुभ दिन सुभ घड़ीयाद पड़ै जब नाम।
लगन मुहरत झूठ सब और बिगाड़ै काम॥

—पलटू (संत सुधासार)

लघुता

ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा सोय तो भरि पियै, ऊँचा प्यासा जाय॥

—कबीर

सब ते लघुताई भली, लघुता ते सब होय।
जस द्वितिया को चन्द्रमा, शीश नवैं सब कोय॥

—कबीर

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥

—रहीम

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि॥

—रहीम

शिखरों से ऊपर उठने देती न हाय! लघुता आपी,
मिट्टी पर झुकने देता है देव! नहीं अभिमान हमें।

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

देख छोटों को है अल्लाह बड़ाई देता।
आस्माँ आँख के तिल में है दिखाई देता॥

—ज़ौक

पंचत्वमेव हि वरं लोके लाघववर्जितम्।
नामरत्वमपि श्रेयो लाघवेन समन्वितम्॥

(किसी के सम्मुख छोटा न बनकर शान से मर जाना भी अच्छा है, परन्तु विश्व में लघुता से युक्त अमरत्व भी प्राप्त हो तो वह अच्छा नहीं है।)

—अज्ञात

लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी लै शक्कर चली, हाथी के सिर घूरि॥

—कबीर

लज्जा

यदि कोई लड़की लज्जा त्याग देती है तो वह अपने सौन्दर्य का सब से बड़ा आकर्षण खो देती है।

—सेंट ग्रेगरी

लज्जा एक संकेत है. जिसे प्रकृति पवित्रता और सम्मान का निवास दिखाने के लिए वाहर लटका देती है।

—गाट होल्ड

पाप के समय लज्जा या संकोच प्रकृति की चेतावनी है और पुण्य के गौरव का प्रमाण है।

—फूलर

लज्जा नारी जाति का अमूल्य आभूषण है। इसे पहन कर असुन्दरी भी आकर्षण का केन्द्र वन जाती है।

—अज्ञात

जब हम अपनी भूल पर लज्जित होते हैं, तो यथार्थ बात आप ही आप मुँह से निकल पड़ती है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

जो अपने होश में नहीं, उसे किसी की लज्जा और संकोच नहीं होता।

—प्रेमचन्द (गबन)

जो मनुष्य सदैव सर्व-सम्मानित रहा हो, जो सदा आत्माभिमान से सिर उठाकर चलता रहा हो, जिसकी सुकृति की सारे शहर में चर्चा होती रही हो, वह कभी सर्वथा लज्जाशून्य नहीं हो सकता, लज्जा पुरुष की सबसे बड़ी शत्रु है।

—प्रेमचन्द (ईश्वरीय न्याय)

पशु और नरों को, एक भेदिका लज्जा,
कुल वधुओं की है सर्वश्रेष्ठ यह सज्जा।

—ताराचन्द हारीत (दमयंती)

हृदय नग्न, तो सात घटों के भी आवरण वृथा हैं;
वसन व्यर्थ, यदि भली भाँति आवृत भीतर का मन है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

उगी हुई कंटक के तले सहा
यथा लखाती अति ही मनोज्ञ है,
तथा कँटीली भ्रु व के तले लसी
सलज्ज की सुन्दर अक्षि सोहती।

—अनूप (वर्द्धमान)

लज्जा तो दुर्बल स्वभाव का लक्षण है। वहुत से व्यक्ति अपने पिता का परिचय देने में भी लज्जा का अनुभव करते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा)

यह बात याद रखनी चाहिए कि फजूल की लज्जा जरूरी लज्जा को मार डालती है। क्योंकि फजूल की लज्जा खुद ही एक शर्मनाक चीज है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (आवरण)

लज्जा ने सदैव वीरों को परास्त किया है, जो काल से भी नहीं डरते वे भी लज्जा के सामने खड़े होने की हिम्मत नहीं करते। आग में कूद जाना, तलवार के सामने खड़ा हो जाना, इसकी अपेक्षा कहीं सहज है। लाज की रक्षा के लिए बड़े-बड़े राज्य मिट गए हैं, रक्त की नदियाँ वह गई हैं, प्राणों की होली खेल डाली गई है।

—प्रेमचन्द (गबन)

संसार की लाज आँखों से दूर की जा सकती है. लेकिन मन से नहीं।

—प्रेमचन्द (सेवासदन)

लज्जा अत्यन्त निर्लज्ज होती है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि)

जब किसी कौम की औरतों में ग़ैरत नहीं होती तो कौम मुरदा हो जाती है।

—प्रेमचन्द

लाली वन सरस कपोलों में, आँखों में अंजन सी लगती ॥
कुंचित अलोकों से घुघराली, मन की मरोर बन कर जगती ॥

—जयशंकर प्रसाद

लज्जाशीलता रमणियों का सबसे सुन्दर आभूषण है।

—प्रेमचन्द (विनोद)

धनहीन प्राणी को जब कष्ट-निवारण का कोई उपाय नहीं रह जाता तो वह लज्जा को त्याग देता है।

—प्रेमचन्द

मैं वह हलकी सी मसलन हूँ।
जो बनती कानों की लाली ॥

—जयशंकर प्रसाद

लाँछन

मनुष्य को पापी कहना ही पाप है; यह कथन मानव-स्वभाव पर एक लाँछन है।

—स्वामी विवेकानंद

अपने कर्त्तव्य में निरंतर लगे रहना और मौन रहना लाँछन का सबसे अच्छा उत्तर है।

—वाशिंगटन

लाचार (दे० बेबस)

लाचार तो जड़ होता है, हम चेतन हैं, आत्म-स्वरूप है अपना वातावरण हम स्वयं बनायेंगे।

—विनोबा भावे

लाभ

कभी-कभी खोना ही सबसे अच्छा लाभ है।

—हर्बर्ट

लाभ उसी का है, जिसने भगवान् को समझ लिया है।

—अज्ञात

प्रेम में जो त्याग वही लाभ। जिससे प्रेम करते हैं, उसे देना लाभ ही है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सामञ्जस्य)

जब भाग्य और लाभ बिल्कुल समान हो जाता है तभी वह यथार्थ लाभ होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नौका डूबी)

जो प्राप्ति हो फूल तथा फलों की,
मधूक, चिन्ता न करो दलों की।
हो लाभ पूरा पर हानि थोड़ी,
हुआ करे तो वह भी निगोड़ी॥

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत)

लालच (दे० लोभ)

लालच भी एक छूत की बीमारी है।

—शरच्चन्द्र (निष्कृति)

जैसे-जैसे धन में वृद्धि होती है लालच बढ़ता है।

—जुविनल

लालच बुरी बला है।

—कहावत

बुद्धि और हृदय के लिए लालच वैसे ही है जैसे साधु वृत्ति के लिए इन्द्रिय सुख।

—श्रीमती जेक्सन

इंसान अगर लालच को ठुकरा दे, तो बादशाह से भी ऊँचा दर्जा हासिल कर सकता है, क्योंकि संतोष ही हमेशा इन्सान का माथा ऊँचा रख सकता है।

—सावी

लालची (दे० लोभ)

लालची इन्सान की ज़िन्दगी वड़ी नहीं होती।

—अज्ञात

लालची किसी के प्रति उदार नहीं होता, पर अपने प्रति तो बहुत ही कठोर होता है।

—जान फिरले

लिपि-भाषा

अब एक लिपि से ही अधिकतर एक भाषा इष्ट है,
जिसके बिना होता हमारा सब प्रकार अनिष्ट है।
अतएव है ज्यों एक लिपि के योग्य केवल 'नागरी',
त्यों एक भाषा योग्य है 'हिन्दी' मनोज्ञ उजागरी॥

—मैथिलीशरण गुप्त (पद्य प्रबन्ध)

लेखक

जिस लेखक की अन्तरात्मा में ही विश्व-श्रोता का आसन है, वही बाहरी श्रोताओं से नकद-विदाई मिलन के लोभ को सम्हाल सकता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साहित्य में नवीनता)

लिखते तो वे लोग हैं जिनके अन्दर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, विचार है। जिन्होंने धन और भोगविलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया है वह क्या लिखेंगे।

—प्रेमचन्द

लिखने में शीघ्रता मुंशी की योग्यता है, लेखक की नहीं।

—शरच्चन्द्र

उपन्यास लेखक में तप चाहिए। तप यानी कायम और ठंडा जोश।

—जैनेन्द्र

लेखक के लिखने का उद्देश्य अपने को सब में बाँट देना है।

—जैनेन्द्र

बाजार में हिन्दी के बिगड़े सपूत अब,
हाथ की सफाई औ तमाशा दिखाते हैं;
कैंची है इनकी माँ, गोंद इनके पिताजी,
दूसरों की काटकर अपने चिपकाते हैं।

—गोपालकृष्ण कौल

हरेक लेखक कुछ अंशों में स्वयं को ही अपनी कृतियों में चित्रित करता है, भले ही ऐसा करना उसकी इच्छा के विरुद्ध हो।

—गेटे

महान लेखक अपने पाठक का मित्र और शुभचिन्तक होता है।

—मैकाले

लेखक की स्याही शहीद के रक्त से ज्यादा पवित्र है।

—अज्ञात

लेखक वही है जो साधना एवं तपस्या का पुजारी है।

—अज्ञात

लोकतन्त्र

बहुमत भी लोकतन्त्र की सच्ची कसौटी नहीं है। सच्चा लोकतन्त्र लोगों की वृत्ति और अभिलाषाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले थोड़े व्यक्तियों से असंगत नहीं है।

—महात्मा गांधी

वही राष्ट्र सच्चा लोकतन्त्रात्मक है, जो अपने कार्यों को बिना हस्त-क्षेप के सुचारु और सक्रिय रूप से चलाता है।

—महात्मा गांधी

लोकमत

लोकमत का अर्थ है कि जिस समाज की राय हमें चाहिए उसका मत। यह मत नीति विरुद्ध न हो तब तक उसका आदर करना हमारा धर्म है।

—महात्मा गांधी

कानून का वास्तविक आधार लोकमत ही है। लोकमत की उपेक्षा करके कोई कानून दीर्घकाल तक जीवित नहीं रह सकता।

—अज्ञात

लोकतन्त्रवादी

लोकतन्त्रवादी कहलाने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को है जो मानव जाति के अत्यन्त दीन प्राणियों के साथ भी आत्मीयता दिखला सके, जो उनसे अधिक सुखमय जीवन बिताने की इच्छा न रखता हो और साथ ही साथ उनकी समता करने का यथाशक्ति प्रयत्न करता हो।

—महात्मा गांधी

अनुक्रमणिका

ग्रंथकारों की नामावली